कथा सागर

पाठ्य पुस्तक

B.A./B.F.A./B.S.W./B. Music/ B.V.A.

बी.ए./बी.एफ.ए./बी.एस.डब्ल्यू/बी.म्यूजिक/बी.वी.ए.

प्रथम सेमिस्टर / I Semester

सम्पादक

डॉ शाकिरा खानुम

डॉ सुलोचना एच.आई.

ಬೆಂಗಳೂರು ನಗರ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾಲಯ

BENGALURU CITY UNIVERSITY

BE BOUNDLESS

प्रसारांग

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय

बेंगलूरु – 560001

KATHA SAGAR: Edited by Dr. Shakira Khanum & Dr. Sulochana. H.I,
Published by Prasarang Bangalore City University: Bengaluru-560001.
Pp. 46 + v

© बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
प्रथम संस्करण – 2021

प्रधान संपादक
प्रो. शेखर

मूल्य

प्रकाशक

प्रसारांग
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु – 560001

भूमिका

बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय में 2021–22 शैक्षिक वर्ष से एन.ई.पी–2020 नियम (पद्धति) के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए नया पाठ्यक्रम जारी किया जा रहा हैं।

इस पाठ्यक्रम की संरचना ऐसी की गई है कि इसके अध्ययन के पश्चात हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी यह जान सके कि साहित्य का विश्लेषण और सराहना कैसे किया जाए और दिये गये पाठ को पढ़ने की समझ किस प्रकार विकसित की जाए, ताकि विद्यार्थी भाषा और साहित्य के उद्देश्य से भली–भाँति परिचित हो सके। जैसे विज्ञान और आदि विषयों के अध्ययन के साथ यह भी अधिक उपयोगी हैं। एन.ई.पी सेमिस्टर पद्धति के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण किया गया हैं।

इस पृष्ठभूमि में हिन्दी अध्ययन–मण्डल ने विभागाध्यक्ष डॉ. शेखर के मार्गदर्शन में पाठ्य–पुस्तक का निर्माण किया है।

विश्वास है कि यह कथा संकलन छात्र समुदाय के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। विश्वविद्यालय की यह शुभेच्छा है कि साहित्य और समाज शास्त्रीय विषयों के लिए भी अधिक उपयोगी और प्रासंगिक लगे। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सभी के प्रति विश्वविद्यालय आभारी है।

डॉ. लिंगराज गांधी
कुलपति
बेंगलूर नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु–560001

प्रधान संपादक की बात .....

बेंगलूरू नगर विश्वविद्यालय शैक्षिक क्षेत्र में नये–नये विषयों को अपने अध्ययन की सीमा में ले रहा है। अध्ययन को नयी राष्ट्रीय शिक्षा नीति – 2020 के अनुसार प्रस्तुति करने का प्रयत्न हो रहा है। साहित्यिक विषयों को आज की बदलती परिस्थिति के अनुसार रखने के उद्देश्य से पाठ्यक्रम को प्रस्तुत किया जा रहा है।

एन.ई.पी सेमिस्टर पद्धति के अनुसार स्नातक वर्गों के लिए पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा रहा है। इस पाठ्य पुस्तक के निर्माण में योग देने वाले सम्पादकों के प्रति मैं आभारी हूँ।

इस नयी पाठ्य पुस्तक के निर्माण में कुलपति महोदय डॉ. लिंगराज गांधी जी ने अत्यधिक प्रोत्साहन दिया, तदर्थ मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

इस पाठ्यक्रम को नयी शिक्षा नीति ध्येयोद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है। गद्य के विविध आयामों को इस पाठ्य पुस्तक में शामिल किया गया। आशा है कि सभी विद्यार्थीगण इससे अवश्य लाभान्वित होंगे।

डॉ. शेखर
अध्यक्ष (बी.ओ.एस.)
बेंगलूरु नगर विश्वविद्यालय
बेंगलूरु – 560001

अनुक्रमणिका

01.	'नामचर्चा' – नरेन्द्र कोहली	01
02.	कटी हुई पतंगे – मोहन राकेश	05
03.	लाक्षागृह' – चित्रा मुद्गल	09
04.	ग्राम – जयशंकर 'प्रसाद'	20
05.	'किस्मत' – सुभद्रा कुमारी चौहान	24
06.	'छुट्टी के दिन' – उषा प्रियंवदा	27
07	सिक्का बदल गया – कृष्णा सोबती	35
परिशिष्ट	–कहानीकारों का परिचय	40

नाम चर्चा

नरेन्द्र कोहली

कहते है, हिन्दी के कथा–साहित्य में गतिरोध आ गया है। ऐसे संकट हिन्दी साहित्य से पहले भी आए हैं और अक्सर आते रहते हैं। हिन्दी में आते हैं तो अन्य भाषाओं के साहित्य में भी आते होंगे। पर फिर भी सारी दुनिया का काम चलता है। पर कोई ऐसी कठिनाई नहीं है, जिसका कोई समाधान न हो।

पर इस गतिरोध में एक भयंकर समस्या दूसरे क्षेत्र में पैदा हो गई है। सारे हिन्दी–भाषी प्रदेशों में नाम को लेकर गतिरोध आ गया है। कहीं किसी के घर में कोई संतान हुई और मुसीबत उठ खड़ी हुई। कितनी भयंकर समस्या है कि बच्चे का नाम क्या रखें।

पता नहीं क्यों, मेरे सारे नाते–रिशतेदारों, मित्रों और जान–पहचान वालों ने यह मान लिया कि संतान उत्पन्न करना उनका काम है, पर उनके बच्चों का नाम रखना मेरा काम है।

इस कर्त्तव्य को पूरा करने में मुझे कोई परेशानी नहीं थी, पर हिन्दी कथा–साहित्य के इस गतिरोध ने मेरी गति अवरुद्ध कर दी है। पहले यह होता था कि किसी ने नाम पूछा और हमने कोई पत्रिका उठा ली। जिस किसी कहानी की नायिका या नायक का नाम दिखा, वही टिका दिया। लोग होते भी इतने सरल थे कि झट वह नाम पसंद कर लेते थे।

अब हिन्दी का कथा–लेखक अपनी कहानियों के नाम रखने से कतराने लगा है। पचासों कहानियां पढ़ जाओ तो कहीं एक–आध नाम मिलता है, नहीं तो लोग 'यह', 'वह' से काम चला लेते हैं। हर कहानी के नायक का नाम 'वह'। और मेरी बात मान अपनी संतान का नाम 'वह' रखने को कोई भी तैयार नहीं। नाम हिन्दी का कहानी–लेखक नहीं रखता, और परेशानी मेरे लिए खड़ी हो गई।

मेरे मस्तिष्क में एक साहित्यिक टोटका आया। मैंने सोचा, कथा–साहित्य में गतिरोध आने पर भी तो आखिर हिन्दी कहानी–पत्रिकाओं का संपादक अपना कार्य किसी प्रकार चला ही रहा है न। कैसे चलाता है वह ?

थोड़ी–सी छानबीन से पता चला कि कलकत्ता और बनारस में बहुत दूरी नहीं है। बस, कलकत्ता से बंगला कहानियां बनारस आ जाती है, अर्थात हिन्दी कहानी–पत्रिकाओं का संपादक बंगला साहित्य से कहानियां स्मगल करता है। मैंने भी वही तरीका अपनाया–बंगाली नामों को हिन्दी में स्मगल करना शुरू किया। सरल–सा मार्ग था। और सुविधा भी यही थी कि कहानी का सर्वाधिकार चाहे लेखक के पास हो, संपादक के पास हो या प्रकाशक के पास, उसके नायक–नायिका के नामों की कापीराइट किसी के पास भी नहीं होता। तो किसी के अधिकारों का अतिक्रमण नहीं हो रहा था।

मैंने हजारों–लाखों बंगला नामों को पीट–पीटकर खड़ा किया और खड़ी बोली के नाम बना लिये।

पर इस बार प्रादेशिकता आड़े आयी। मेरे भाई–बन्धु, मित्र तथा पड़ोसी अधिकांशतः पंजाबी हैं। दूसरे प्रदेशों के लोग मेरा पंजाबी अक्खड़पन कम ही सहते हैं, इसलिए अधिक निभाती नहीं। एक कश्मीरी बन्धु ने एक बार कहा था कि मैं उनकी पुत्री के लिए कोई अच्छा–सा नाम चुनकर दूं। पर उनकी अनेक शर्तें थीं। एक तो वे कश्मीरी थे और कश्मीर एक बहुत सुन्दर प्रदेश है। फिर उनकी बिटिया कश्मीर के सौन्दर्य से भी अधिक प्यारी थी। उस बच्ची

का नाम कुछ ऐसा ही होना चाहिए था जिसमें कश्मीर का सारा प्राकृतिक सौन्दर्य साकार हो सके। मैंने क्षमता–भर परिश्रम किया, किन्तु किसी भी नाम से उन्हें संतुष्ट नहीं कर पाया। अंततः उन्होंने ही कहा कि यदि मैं कोई नया नाम नहीं दे सकता तो उनके सोचे हुए नाम का हिन्दी में कोई अच्छा–सा पर्याय दे दूं, जो कि उस बच्ची का नाम रखा जा सके।

मैंने उनकी बात मान ली, इसमें मुझे कोई परेशानी नहीं थी। मैंने उनका सोचा हुआ नाम पूछा।

''रोज़ालीना।'' वे बोले, तो ''इसमें कश्मीर का सौन्दर्य, कश्मीर के रोज का सौन्दर्य, सब कुछ आ जाता है। वैसे पंडित नेहरू भी कश्मीरी थे और वे अपने कोट पर गुलाब का फूल भी टांकते थे। सच पूछिए तो..... ''और वे अत्यन्त भावुक हो उठे–''रोज़ालीना शब्द से ही हमारी बेबी का चेहरा आंखों के सामने घिर जाता है।''

''नाम तो सुन्दर है।'' मैंने स्वीकार किया।

''बस, कठिनाई इतनी है कि नाम अंग्रेजी में है और हमारे रिश्तेदार इसे हज़म नहीं कर पा रहे। आप इसका हिन्दी या भारतीय पर्याय दे दें।'' उन्होंने कहा।

मैंने बहुत सोचा, शब्दकोश उलट–पलट डाले और तब खोजकर उनको 'रोजालीना' का पर्याय दिया, 'गुलाबो'।

उन्होंने मेरा चेहरा देखा और नाक सिकोड़कर बोले, 'आखिर पंजाबी हो न।'

मुझे तब भी लगा था कि प्रादेशिकता मेरे कर्त्तव्य कर्त्तव्य में बाधा खड़ी कर रही है। और अब जब मैंने बंगला से नाम स्मगल करने आरम्भ किए हैं, तब भी मुझे यही लग रहा है।

अभी कल ही मेरे एक पंजाबी पड़ोसी आए थे। उनके घर पर परम परमेश्वर की किरपा से एक पुत्तर का जनम होया था। अतः वे चाहते थे कि मैं उनके सुपुत्तर के लिए कोई सोणा–सा नाम चुन दूं।

मैं मान गया। वैसे इतनी जल्दी मैं सामान्यतः माना नहीं करता। पर कल रात से एक बड़ा मधुर–सा नाम मेरे मन में चक्कर–भंवीरी काट रहा था। सोचा इनको वही नाम बता दूं। इनके सुपुत्तर का नाम मिल जाएगा और मुझे उसकी चक्कर–भंवीरी से मुक्ति।

मैंने कहा, ''लालाजी ! इसका नाम तो आप रखें 'निकुंज'। बढ़िया नाम है और सारे मुहल्ले में किसी का नहीं है।''

''आप मज़ाक बढ़िया करते हैं, मास्टर साहब !'' वह दोनों हाथों से ताली पीटकर खिड़खिड़ाए, ''क्या नाम चुना है। कुंभकरन जैसा लगता है।''

मैंने कुछ नहीं कहा, चुपचाप उन्हें देखता रहा।

''ऐसा करो'', वह बोले, ''कोई बढ़िया–सा अंगरेजी का नाम सोचो। मैंने सोचा है, वैल्कम कैसा रहेगा ? अपने मकान का नाम भी हम इसी पुत्तर के नाम पर 'वैल्कम बिल्डिंग' रखेंगे।''

मेरी बुद्धि चक्कर खा गई। ऐसे नाम की तो मैंने कल्पना ही नहीं की थी। पिंकी–शिंकी तो लोग आम रखने लगे हैं। सुना था, किसी ने अपनी बेटी का नाम 'ट्विंकल' भी रखा है। हमारे पड़ोस में एक साहब ने अपने बेटे को 'प्रिंस' घोषित किया है। पर वैल्कम ऊँचा नाम था।

''पहला पुत्तर है न?'' मैंने पूछा।

''हां जी! पैह्ला, एकदम पैह्ला।'' वह बोले।

''तो ठीक है'', मैं बोला, ''इसका नाम वैल्कम रखिए और दूसरे का फेयरवैल।''

वे एक साथ दो–दो नाम पसंद कर चल पड़े।

अभी पिछले दिनों ही क्षेत्रीयता ने मुझे एक बार और पछाड़ दिया। हमारे मकान से चौथे मकान में रहने वाले मेरे पड़ोसी का लड़का तीन वर्ष का हो गया था, पर वे अभी तक उसके लिए एक नाम तक नहीं खोज पाए थे। जैसे–जैसे दिन निकलते जाते थे, उनकी चिन्ता और भी गहरी होती जाती थी। जब अपने लड़के के लिए एक उपयुक्त नाम तक नहीं ढूंढ़ पा रहे थे तो उसके योग्य कन्या और नौकरी कहां से खोज पाएंगे।

मुझसे मिले तो अपनी चिंता–गाथा ले बैठे। जब वे बहुत रो चुके और बहुत रोकने पर भी मेरा हृदय पूरा गल गया और फेफड़ों की बारी आ गई तो मैंने पूछा, ''आखिर समस्या क्या है?''

''समस्या क्या है?'' वह बोले, ''बबुआ की महतारी की हठ। और क्या?''

''क्या हठ है?'' बहुत चाहने पर भी उनका घरेलू रहस्य पूछने से मैं स्वयं को न रोक सका।

वह बोले, ''हमारा बबुआ बहुत शोर मचाता है, बहुत ही ज्यादा। उसकी महतारी कहती है कि उसका नाम उसके शोर मचाने पर ही रखेंगे।''

मैं चकित हो गया, हठ को सुनकर। वह भी क्या हठ। लोग गुण पर तो नाम रखते ही हैं, पर दोष को लेकर नाम! तिरिया हठ!

मुझे चिन्तित देखकर वह बोले, ''कोई नाम सोच रहे हैं क्या है?''

मैंने कहा, ''एक नाम सूझा है। आपके बबुआ के शोर मचाने से मिलता–जुलता नाम। शायद आपको पसंद आए।''

''हमारी पसंद क्या है'', उनका मुंह लटका ही रहा, ''पसंद तो बबुआ की महतारी की। बोलिये, क्या नाम सूझा है आपको?''

''कोलाहल!'' मैंने बताया।

''कोलाहल!'' उन्होंने दोहराया, ''वैसे तो सुन्दर है, पर बबुआ की महतारी को पसंद नहीं आवेगा।''

''क्यों?'' मैंने पूछा।

बोले, ''नाम तो कोई हमारे देसवा जैसा ही होना चाहिए। जैसे हमारा नाम है रामखेलावन। कोई ऐसन ही नाम हो।''

मेरी बुद्धि चकमक हो रही थी। जल्दी से बोला, ''रामखेलावन के तोल पर आप शोरमचावन रख लीजिए।''

''शोरमचावन!'' वह उछल पड़े, ''बहुत बढ़िया। हम तीन बरिस से एही नाम तो खोज रहे थे। आप सचमुच बहुत बुद्धिमान हैं, मास्टर साहब!''

और वे चले गए।

बच्चे के गुण–दुर्गण पर नाम रखने वाले वह अकेले ही नहीं थे।

मेरे एक मित्र का पल्ला पकड़कर एक और साहब आए। पता नहीं लोगों को कहां–कहां से मालूम हो जाता है कि मैं बच्चों के नाम रखने में बहुत दक्ष हूं।

मैंने उन्हें चलते–से दो–तीन नाम सुझाकर पीछा छुड़ाना चाहा तो वह खुले।

बोले, ''ऐसे नहीं चलेगा, साहब ! हम तो आपको नामों का स्पेशलिस्ट समझकर आए हैं।''

''आपको कैसा नाम चाहिए?'' मैं ऐसे अवसरों पर स्वयं को उस दूकानदार की स्थिति में पाता हूं, जो ग्राहक को तैयार माल से संतुष्ट न कर पाने के कारण, आर्डर पर माल

बनवा देने का प्रस्ताव रखता है।

''बात यह है, साहब !'' वह बोले आप जानते हैं, किसको अपना बच्चा प्यारा नहीं लगता। हमें भी अपना बच्चा प्यारा है। वैसे आप उसे देखे तो आप भी मानेंगे कि वह बहुत प्यारा है। क्यों भाई साहब।'' उन्होंने मेरे मित्र को टहोका दिया, ''ठीक कर रहा हूं न?''

''जी हाँ, जी हाँ बहुत प्यारा बच्चा है।'' मेरे मित्र ने कहा।

''पर साहब!'' वह फिर बोले, ''बहुत सताता भी है हम चाहते हैं कि उसका कुछ ऐसा नाम रखा जाए कि उसका प्यारापन और सताना दोनों ही बातें कवर हो जाएं। काम तो कठिन है पर आप विद्वान हैं. कोई–न–कोई नाम तो सुझा ही देंगे।

मैंने सोचा, काम वस्तुतः बीहड़ था। लोग भी कैसे कैसे मूर्ख होते हैं। क्या शर्तें लाए हैं! पर ठीक है, मैं भी विद्वान हूं।

मेरी बुद्धि ने एक चमत्कार किया। ऐसे चमत्कार वैसे कभी–कभी ही होते हैं। पर हो जाते हैं।

मैं बोला, ''आपकी शर्त बहुत कठिन है, पर फिर भी प्रयत्न करना हमारा धर्म है। मेरे मन में एक नाम है। नाम अत्यन्त साहित्यिक है और हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार, कवि तथा नाटककार जयशंकर 'प्रसाद' की अलौकिक प्रतिभा की उपज है।'' मैंने देखा, वे श्रद्धा से नत होकर मेरी बात सुन रहे थे। मैं फिर बोला, ''प्रसाद ने भी बचपन के इन्हीं दोनों पक्षों को एक साथ देखा था और अपने एक गीत 'उठ–उठ री लघु–लघु लोल लहर' में उन्होंने प्यारे और हठीले बचपन को 'दुर्ललित' कहा है। आप यही नाम अपने बच्चे का भी रख दें।''

उनके चेहरे के भाव नहीं बदले। वे वैसे ही जड़ मुद्रा में बैठे रहे।

''साहब! हम नौकरी–पेशा लोग तो हैं नहीं।'' कुछ देर बाद, बड़ी खीझ के साथ बोले, ''फैशनेबल नाम हमारे घरों में नहीं चलते। हमारे बच्चे को तो बड़े होकर आढ़त का काम करना है, फर्म खोलनी है। हमें तो ऐसा नाम चाहिए, जो किसी फर्म का नाम भी हो सके। लटठाराम गेंदामल बगैरह–बगैरह। कोई ऐसा ही नाम बताइए।''

मैं फिर चिन्ता में पड़ गया। ठीक है, नाम को लेकर जहां क्षेत्रीय आग्रह है, वहां व्यावसायिक आग्रह भी होंगे। आखिर किसी फिल्म एक्टर का नाम बिछावनमल तो नहीं हो सकता न ! उसी तरह फर्म का नाम.....और फिर उनकी शर्तें!

मैं बोला, ''आप ऐसा करें, बच्चे का नाम प्यारूमल सताऊमल रख दें। फर्म का नाम जरूर लगेगा, बच्चे का चाहे न लगे।''

उनकी आंखों का भाव पहली बार बदला और वह चमककर बोले, ''मारा! अब ठीक है। वाह प्यारूमल सताऊमल एण्ड संस! वाह भई, वाह !''

पर मैंने उसी दिन से नाम बताने का काम स्थगित कर दिया है। अब मैंने नामों का वर्गीकरण आरम्भ कर रखा है– फर्मों के उपयुक्त नाम, नेताओं के उपयुक्त नाम, एक्टरों के उपयुक्त नाम इत्यादि। देखना यह है कि कितने वर्ग बनते हैं और फिर उनके अनुसार नामों की सूचियां बनाऊंगा और फिर नाम बताने का धन्धा आरम्भ कर दूंगा। उन नामों को पेटेंट करवा लूंगा और फिर उन पेटेंट नामों की रायल्टी देकर ही लोग उनमें से कोई नाम रख सकेंगे। आप अपनी आवश्यकता अग्रिम रूप से लिख भेजें!

*****

कटी हुई पतंगें

मोहन राकेश

लाल पतंग आकाश में कट गई थी। हवा की लहरों में डगमगाती और चक्कर खाती हुई वह नीचे की ओर आ रही थी। बहुत–से बच्चे इधर–उधर से भागकर सड़क के बीचों–बीच जमा हो गए थे और इस आशा में थे कि पतंग गिरे और उसे दबोचें। एक बच्चा, जिसके कपड़े औरों की अपेक्षा अधिक साफ थे, सड़क के किनारे ही आकर रुक गया था और वहीं से बाँहे उठा–उठाकर चिल्ला रह था–छीपो! मेरा ई माल! छीपो! मेरा ई माल! (पंजाब में कटी हुई पतंगों को देखकर बच्चे इस तरह चिल्लाने लगते हैं और उनका विश्वास रहता है कि इस तरह कहने से कटी हुई पतंग उनके हाथ आ जाएगी !)

पतंग अभी धरती से कई फुट ऊपर ही थी कि लूटने वालों के हाथों ने उसे एक साथ दबोचा और निमिष–भर में ही उसकी धज्जियाँ करके उसके मसले हुए कलेवर को कीच में फेंककर भाग गए।

उनके चले जाने पर वह बच्चा, जो सड़क के किनारे खड़ा, मसली हुई पतंग के पास आया। नीचे झुककर उसने पतंग को ध्यान से देखा, फिर उस पर अपने पैरों की छाप लगाकर नाचता–डगमगाता वापस लौट गया।

रवि मुसकराया। जब बच्चा आँखों से अदृश्य हो गया, तो उसने पुनः उड़ती हुई पतंगों की ओर देखा। नीली और जामुनी पतंगों का पेच लड़ रहा था। वे पतंगें जिस दिशा में बढ़ रही थीं, उसी दिशा में कुछ और ऊपर जनवरी महीने के सूखे बादल अपने–आपको कई–कई तरह के चित्रों के बदल रहे थे। वे हलके और प्रसन्न थे, क्योंकि वे बूँदे बरसा चुके थे। उनके पीछे कुछ और भी गहरे–गहरे बादल थे, जो अभी बरसे नहीं थे। उन पर से हटकर रवि की आँखें उस दिशा में घूम गई, जिधर से उसकी बस आने वाली थी। समय हो चुका था, पर बस अभी भी आ नहीं रही थी।

उस दिन जनवरी 51 की 26 तारीख थी। भारत के गणराज्य घोषित होने के दूसरे वर्ष दिन के उपलक्ष्य में जो उत्सव मनाया जा रहा था, वह उसके बीच से ही उठकर चला आया था, क्योंकि उसे भूख लग आई थी। आते समय रास्ते में उस पर बूँदे उतर आई थीं, जिससे उसका कोट, जो गहरा भूरा होने के कारण कभी मैला नहीं होता, पूरा भीग गया था। कोट की जेब के अन्दर रुपए वाला वह नोट भी भीग गया था, जिसकी खाल कई जगह से उधड़ रही थी। भीगकर नोट की अवस्था विचित्र हो गई थी, परन्तु उस अवस्था में भी उसमें भूख मिटाने की सामर्थ्य तो थी ही।

प्रोफेसर सत्यमूर्ति विद्यालंकार ने रवि के कंधे पर हाथ रखा। दोनों बाँहों में पुस्तकें, एक हाथ में परचे और एक हाथ में छाता लिए प्रोफेसर सत्यमूर्ति विद्यालंकार सचमुच ही विद्या के अलंकार लग रहे थे।

–पैदल नहीं चलते?– प्रोफेसर विद्यालंकार ने अपने गोल और चिकने चेहरे को प्रश्नसूचक बनाकर पूछा।

रवि बस की प्रतीक्षा करते–करते दो पतंगों के पेच देख चुका था। वह तुरन्त प्रोफेसर विद्यालंकार का साथ देने के लिए तैयार हो गया। मन ही मन उसने रास्ते को मंजिलों में बाँट

लिया–गाँधी कैंप, पटेल चौक, अड्डा कपूरथला और रैनक बाज़ार। एक ही लम्बा रास्ता तय करने की अपेक्षा वह पाँच–छह छोटे–छोटे रास्ते तय किया करता था। इससे थकान कुछ कम महसूस होती थी। चलते–चलते वह अपने कदम गिनने लगा।

सहसा एक बूँद उसके सिर पर गिरी। फिर दो बूँदें उसके कालर पर गिरी। फिर कितनी ही मोटी–मोटी बूँदें चारों ओर गिरने लगीं।

प्रोफेसर सत्यमूर्ति विद्यालंकार ने जल्दी से अपनी पुस्तकें और परचे उस पर लाद कर छाता खोलने की चेष्टा की। छाता खोलने में उन्होंने सत्य और मूर्ति, दोनों का जोर लगा दिया पर छाता नहीं खुला। छाता वास्तव में जंग खाए हुए और मनुष्य न होने के कारण विवश नहीं था कि जैसे भी हो सके, अपने स्वामी की इच्छा का पालन करे।

छाता दबाने, झटकने और ठोकरें मारने पर भी नहीं खुला, तो हारकर वे दोनों पक्की ईंटों के बने गाँधी गेट की ओर भागे, जिसके न इस ओर कोई दीवार है, और उस पार और जो गाँधी कैंप के तम्बुओं के आगे दिन–रात मन मारे खड़ा रहता है। जब कड़ी धूप पड़ती है, या तेज़ आँधी आती है, मूसलाधार वर्षा होती है, तब गाँधी गेट उन सबके सामने सत्याग्रह करके कहता है कि हे आकाश की शक्तियों स्वतंत्र भारत के इन स्वतंत्र शरणार्थियों पर आक्रमण करने से पहले तुम मुझ पर वार करो, क्योंकि मेरा नाम गाँधी गेट है और मैं महात्मा गाँधी का स्मारक हूँ।

गाँधी गेट के नीचे आकर रवि ने सिर के बालों के निचोड़ा, गेट की छाया में उस समय और भी बहुत–से लोग थे। परन्तु उन्हें देखकर यह नहीं लगता था कि वे वर्षा के कारण भागकर वहाँ आए हैं। वे वहाँ थे, जैसे कंकड़–पत्थर और कागज़ वहाँ थे। रवि की दृष्टि पुरुषों वाली पंक्ति के पीछे एक किवाड़ के ऊपर लगे हुए टीन के बोर्ड से टकराई, जिस पर लिखा था– आटे का डिपो।

आटे का डिपो–ईश्वर और शैतान, दोनों का भाईचारे की दुकान। रवि को अपनी भूख याद हो आई। वर्षा तेज़ होती जा रही थी। बहुत–से लोग तम्बुओं में से निकलकर गाँधी गेट की शरण में आते जा रहे थे। थोड़ी ही देर में रवि के चारों ओर इतने व्यक्ति एकत्र हो गए कि वह दूसरों की साँसे सूँघने के लिए विवश हो गया। जब दबाव कुछ और भी बढ़ा, तो उसने देखा कि न जाने कैसे प्रोफेसर विद्यालंकार ने अपना छाता खोल लिया है और टूटे हुए जूते को घसीटते हुए सड़क की सीध में चले जा रहे हैं।

जब उसकी आँखें प्रोफेसर विद्यालंकार ऊँचे तंग पायजामें, नीले कोट और काली टोपी से हटकर समूह की ओर आई, तो वहाँ उसने एक युवती की आँखों को अपनी ओर देखते पाया।

युवती की त्वचा भूरे रंग की थी। भूरा रंग उसके कोट जितना भूरा तो नहीं, हाँ, इतना भूरा अवश्य था कि उसके चेहरे का मैल सहसा दिखाई न दे। वह उसकी ओर ऐसी दृष्टि से देख रही थी, जैसे आकाश में उड़ती हुई किसी चील को देख रही हो।

पहले तो रवि को लगा कि उस युवती का आकृति किसी परिचित, पर भूली हुई आकृति से मिलती–जुलती है, फिर सहसा ही वह उसे पहचान गया। वह राजकरनी थी–वही राजकरनी, जो आदत न होने पर भी उसे देखकर सकुचाने की चेष्टा करती थी। लाहौर कृष्णनगर के जिस कबूतरखाने में वह किरायेदार था, उसी कबूतरखाने की बीच वाली कोठरी में धाया लज्जावती रहती थी, जिसकी वह लड़की थी। वह उसे जानता था, पर उसका परिचित नहीं था। कबूतरखाने की सीढ़ियाँ चढ़ते–उतरते वे कई बार आमने सामने

पड़ जाया करते थे। वह एक ओर को हट जाती और वह निकल जाता, या वह एक ओर हट जाता और वह निकल जाती। दो साल तक वे इस तरह सीढ़ियों में एक–दूसरे को रास्ता देते रहे, परन्तु उसकी ओर वह एक विचित्र संकोच के साथ देखा करती थी। राजकरनी का वह संकोच उसे बहुत मीठा लगा करता था।

परन्तु आज वह जिस दृष्टि से देख रही थी, उसमें न वह संकोच था और न वह मिठास। उसका शरीर स्त्री–पुरुष की भीड़ में भिंचा जा रहा था। उसे इसकी चिन्ता नहीं थी। शरीर को दूसरों के स्पर्श से बचाकर रखना है, ऐसा कोई भाव उसके चेहरे पर नहीं था। वह उसकी ओर केवल देखने ही के लिए देख रही थी, यद्यपि उसकी आँखों में एक घायल इतिहास झाँक रहा था। तेज नाखून, विकराल पंजे, माँस की बोटियाँ, लहू की लकीरें, उबली हुई जमीन, उबला हुआ आकाश, चीत्कार–चीत्कार और शेष दो टिमटिमाती हुई मौन आँखें।

वह उसे उन्हीं टिमटिमाती हुई आँखों से देख रही थी। रवि के मन में आया कि वह उसके पास जाकर उससे बातें करे। परन्तु......

वह सड़क पर भीगते हुए गधों को देखने लगा। आठ–दस गधे थे।, जो एक–दूसरे के अस्तित्व से उदासीन वर्षा की ठण्डी मार खा रहे थे। उसने महसूस किया कि जिस भीड़ में वह खड़ा है, वह भीड़ भी कुछ ऐसी ही है और वह स्वयं भी उसी भीड़ की एक इकाई है।

सड़क पर बस छींटे उड़ाती हुई आ रही थी। बस के हार्न की आवाज़ सुनकर गधे सहसा बिदक उठे और किसी राष्ट्रीय अंत:प्रेरणा से सीधे गाँधी गेट की ओर भागे। गेट के नीचे एकत्र भीड़, जो अपनी इकाईयों से उदासीन थी, इन नई इकाईयों के समावेश से भौखला उठी और उन्हें रास्ता देने के लिए दो भागों में बँट गई।

दो–तीन गधे अपने इस सम्मान को गंभीरतापूर्वक ग्रहण करके सधी हुई चाल से चलते हुए गेट के दूसरी ओर निकल गए। उनके पीछे तीन–चार गधे दोनों ओर की भीड़ को देखकर प्रसन्नतापूर्वक सिर हिलाते हुए ऐसे निकल कर गए, जैसे किसी अभिनन्दन–पत्र का उत्तर दे रहे हों। एक गधा, जो स्वयं बाहर ठहरकर दूसरों को पहले निकलने का अवसर दे रहा था, सबके अंत में पुलिस– इन्सपेकटर की तरह प्रविष्टि हुआ और एक बार अपने शरीर को चारों ओर घुमाकर, रुककर और जाते हुए गरदन ऐंठकर नथूने फुलाता हुआ यह व्यक्त कर गया कि उसे इस तरह के डिसिप्लिन से तनिक भी संतोष नहीं। उस गधे के निकल जाने पर बीच की दरार फिर से मिल गई। परन्तु उस दरार के मिलते न मिलते एक कर्मश स्वर उभरकर सुनाई देने लगा। यह स्वर किसी अभ्यस्त स्त्री–कण्ठ से निकलने का था–रंडी! कुत्ती! खसमाँ नूं खानी!

रवि ने देखा कि गालियाँ देने वाली की बुझी हुई आँखें राजकरनी को घूरकर देख रही हैं। वे आँखें, जो लाल होने की असफल चेष्टा कर रही थीं, वास्तव में इतनी बुझी हुई थीं कि उनमें कोई भी भावना अपनी झलक नहीं दिखा सकती थीं। गालियाँ देने वाली की आयु तीस–बत्तीस से अधिक नहीं थी, परन्तु उसके सूखे और काले होंठो में जीवन नाममात्र को भी नहीं था। फिर भी वह इतने आवेश में आकर गालियाँ दे रही थी, मानो उन गालियों पर ही उसके जीवन की विजय या पराजय निर्भर करती हो।

–अंधी हो गई है रंडी! बहुत मस्ती चढ़ी है, तो जाकर अपने यारों को दिखा।

परन्तु राजकरनी चुपचाप थी, वह लड़की जिसे कृष्णानगर के उस मोहल्ले की लड़कियाँ 'बिल्ली', 'बाघन', 'रीछनी' कहा करती थीं, आज मरे हुए शिकार की तरह न कुछ सुन रही थी, न समझ रही थी।

राजकरनी की चुप्पी से गालियाँ देने वाली और भी उत्तेजित होती जा रही थी–माँ रंडी मर गई सौदे करती......।

सहसा राजकरनी भड़क उठी–माँ को गाली मत दे री, नहीं तो यहीं पर भुरता कर डालूँगी।

उत्तेजना में उसका जो स्वर रवि ने सुना, वह वही थी, जो लाहौर में सुना करता था। रवि ने महसूस किया कि उसके अन्दर आज भी वही लहू है, जीवन है और जीने की शक्ति है–वह क्रोध में उबलकर फिर वही हो गई हैं, जो पाँच साल पहले थी।

–कर दे भुरता, तुझे जवानी की मार! कुछ आजादी ने किया है, कुछ तू कर दे! और गालियाँ देने वाली रोने लगी।

राजकरनी फिर मुरझा गई। क्षण–भर के लिए जो लाली उसके चेहरे पर आई थी, वह अदृश्य हो गई, और उसके स्थान पर वही निर्जिविता फैल गई, जो पाँच साल से उसकी कोमलता को, उसके शरीर की चिकनाहट को, उसके कपड़ों की सफेदी को और उसकी रोटियों के स्वाद को खा रही थी। परन्तु उस क्षण–भर की लाली ने जिन–जिन आँखों को अपनी ओर खींचा, वे आँखें उसके चेहरे पर जमीं रह गई। रवि ने देखा कि उन आँखों में वही लूटने वाला भाव है, जो पतंग लूटने वाले बच्चों की आँखों में था। उसने चाहा कि वह उसे बाँह से पकड़कर उन आँखों से परे ले जाए, परन्तु.....फिर वही प्रश्न सामने आया कि किस सम्बन्ध से? और सम्बन्ध से नहीं, तो किस उद्देश्य से?

वर्षा थम जाने पर रवि सड़क पर आया, तो उसने महसूस किया कि वह उसे कटी हुई पतंग को लूटने वालों की भीड़ में छोड़ आया है, परन्तु जब वह उस भीड़ से दूर पहुँच गया, तो उसे महसूस हुआ कि उसकी अपनी स्थिति भी उस बालक जैसी है, जो सड़क के किनारे खड़ा होकर पुकार रहा था– छीपो! मेरा ई माल! छीपो! मेरा ई माल!

*****

लाक्षागृह

चित्रा मुद्गल

सुन्नी लिफ्ट से बाहर आई।

लिफ्ट के दोनों दरवाज़ों से सटे , जूट के सस्ते किस्म के कार्पेट से ढके हुए फ़र्श के छोटे टुकड़े दाहिनी तथा बाईं ओर लम्बी राहदरी की शक्ल में विभक्त हो गए थे।

राहदरी से जुड़े हुए थे हालनुमा कमरे। कमरों में सूखे अटे–सटे दर्जनों चेहरे, उससे भी ज़्यादा मेज–कुर्सियाँ। संग कतारबद्ध फ़ाइलों के बोझ से बदरंग हुए कपबोर्ड।

सुन्नी को एकाउंट्स विभाग में जाना था। हाथ के कागज़ों पर दृष्टि डालकर जैसे ही वह बाईं ओर मुड़ी, राहदरी में सिन्हा और स्वामीनाथन की बातचीत में अपना ज़िक्र सुनकर ठिठक गई। मोड़ पर बढ़ा हुआ पैर उसने पीछे खींच लिया। आँखों के समक्ष पेमेंट्स लिस्ट फैलाकर पढ़ने का उपक्रम करने लगी। लिफ्ट से आने–जाने वालों की दृष्टि उस पर पड़ सकती थी। राहदरी से गुजरने वालों की भी। यही सोचकर यह नाटक आवश्यक लगा।

चश्मे के काँच पर जम आई बरसाती नमी की–सी धुन्ध एकाएक उसकी आँखों में उतर आई।

उसे दिखाई देना बन्द हो गया। सुन्नी को महसूस हुआ–वह ज़्यादा देर यहाँ खड़ी नहीं रह सकती, न पसीजती बेजान टाँगों को एक–एक डग घसीटती एकाउंट्स विभाग तक पहुँच सकती है। जो कुछ उसने सुना, वह उसके लिए अपने विषय में कोई नई प्रतिक्रिया नहीं थी, किन्तु जिसके द्वारा व्यक्त की गई, अवश्य अप्रत्याशित थी–धमनियों पर सहसा ब्लेड रेत देने जैसी।

लिफ्ट के लाल तीर के संकेत द्वारा उसके ग्यारवों माले पर होने की सूचना के बावजूद पूरी ताकत से उसने काल बटन पर अँगूठा दबा दिया।

राहदरी में उसकी उपस्थिति से अनभिज्ञ, अपनी रौ में बोलते सिन्हा की भारी, आकर्षक आवाज़ और उस पर प्रतिक्रियास्वरूप स्वामीनाथन का कटाक्षपूर्ण फूहड़ ठहाका पिघले हुए सीसे–सा कानों में टपकता परदों पर फफोला–सा फूलता, मास के गहरे धँसकर रह गए बबूल के काँटे–सा टीसता, समूची देह को लँगड़ाहट में बदलता, लिपटा–लिपटा उसकी सीट तक चला आया।

दोनों हाथों के अँगूठों से उसने भौहों के नीचे छिपी हुई माथे की हड्डियों को हल्के–हल्के चाँपा। थोड़ी सहज हुई तो चपरासी रामलाल को आवाज़ दी और पेमेंट्स लिस्ट उसके हाथों में थमाकर एकाउंट्स में मि. शर्मा को दे आने के लिए कहा।

रामलाल उसकी मेज से लगा क्षण–भर रुका रहा।

''शर्मा सा'ब कुछ पुच्चेगा तो?'' सुन्नी ने दृष्टि नहीं उठाई,

''कह देना मुझसे फ़ोन पर बात कर लें।''

आँखें उठा रामलाल की ओर देख पाना और देखने के बाद उसकी आँखों में उभरे प्रश्नों को सन्तुष्ट कर पाना उसके वश में नहीं।

लंच के बाद का वक्त था।

सुबह से टाले जा रहे सरकारी काम का कुछ अंश निपटाने में पूरा हाल मुस्तैदी की

नाटकीय हबड़ा–तबड़ी ओढ़े तकरीबन व्यक्त था।

उसने टाइपराइटर पर नया रिबन चढ़ाया और अपनी तेरह साल पुरानी नौकरी से त्यागपत्र टाइप करने बैठ गई। अब वह नौकरी नहीं करना चाहती। वह नौकरी नहीं, नौकरी उसे जीने लगी है। उसके अस्तित्व का पर्याय उसकी शिनाख़्त बन गई है, जिसे वह कभी स्वीकार नहीं कर सकती।

अक्षरों पर नर्तन करती–सी, शब्द उगलती उसकी उँगलियाँ, शब्द नहीं, उसके खौलते लावे का द्रव्य उगल रही हैं। अचानक गति में व्यवधान पड़ा। चेहरा उठाया उसने। उसकी मेज से सटे मि. भार्गव उससे किसी जरूरी फ़ाइल के विषय में पूछ रहे हैं, वह कुछ सुन नहीं पा रही। उसे लग रहा है, मि. भार्गव अचानक गूँगे हो उठे हैं और महज होंठों की हरकत से अपना अभिप्राय समझाने की कोशिश कर रहे हैं।

उसके कानों में भानूबेन के शब्द साँय–साँय उड़ रहे हैं–

''देवेन्द्र तो खुदिच छः सात सौ रुपिया मैना लाता घर में। सुनिता को नोकरी–चाकरी नई करने देगा। हमारा गुज़राती लोग में सासरे जाकर छोकरी का नोकरी करना पसन्द नई करते।''

अति व्यस्त भाव से गरदन उठाकर उसने शून्य दृष्टि से उनकी ओर देखा।

भार्गव साहब उलझन में फँस गए,

''कुछ जरूरी टाइप कर रही हैं ?''

''जी ।''

वह टाइपराइटर से उँगलियाँ हटाकर मेज को अस्त–व्यस्त बना रहे काग़ज़ों के पुलिंदे को इधर–उधर सरकाने, सरियाने लगी।

''अस्वस्थ लग रहीं आप, फ़ाइल कोई ऐसी ज़रूरी नहीं। चाय पीना चाहें तो आइए कैंटीन चलें। शायद कुछ आराम मिले।''

इस कार्यालय में आदमी नहीं, बरैया रहती हैं जो लाख भगाने, दरवाज़े, खिड़कियाँ बन्द करने के बावजूद सिर पर भन्नाती–मँडराती रहती है।

उसने भार्गव साहब को उनके चाय के प्रस्ताव के लिए धन्यवाद कहा और अपने काम में लगती–सी टाइपराइटर पर आधे टंकित पत्र की इबारत ग़ौर से पढ़ने लगी। अचानक उसे ख़याल आया कि वह यह क्या कर रही है ? पत्र की ओर भार्गव साहब का ध्यान आकर्षित कर रही है। भार्गव साहब को उसके त्यागपत्र के विषय में पता लग गया तो निश्चित ही वह आज कार्यालय की सनसनी ख़ेजज ताजा ख़बर होगी। होती रहे। ताजा खबर किसी लड़की के त्यागपत्र देने पर जरूर बनती; अगर उसकी जगह बीना बर्मा या सुधा अखिल जैसी विभागीय सुन्दरियाँ होतीं।

भार्गव ने वही किया जिसका उसे अन्देशा था।

लटके पत्र को ग़ौर से पढ़ते हुए उन्होंने प्रश्न किया,

''किसका त्यागपत्र टाइप कर रही हैं आप?''

झूठ बोलने या बातों की जलेबी बनाने का कोई अर्थ नहीं,

''अपना।''

''अपना! क्यों?''

''क्योंकि मैं शादी करने जा रही हूँ।''

कहकर वह टिपरिटर पर लगा अधूरा पत्र पूरा करने में जुट गई।

पत्र पूरा कर उसने टाइपराइटर से अलग किया। दराज में से एक ख़ाली लिफ़ाफ़ा निकाला। निदेशक को सम्बोधित कर कार्यालय का पता टाइप किया। पत्र पर्स में रखकर उठ कड़ी हुई। मेज जैसी थी वैसी ही छोड़ अपनी सीट पर खड़े–खड़े पीछे घूमी,

''मिश्राजी, सुनिए।''

पीछे की मेज पर सिर झुकाए बैठे मिश्राजी ने फैली हुई फ़ाइलों में से सिर उठाया। उसके निंदाए चेहरे पर अप्रसन्नता गहराई। लंच करने के बाद का समय जब औरों के लिए काम को हाथ लगा देने की औपचारिकता का होता है, मिश्राजी के लिए कुछ सुस्ता लेने का। अपने हिस्से की अधिकांश फ़ाइलें वे कार्यालय में दाखिल होते ही सूँघ–सूँघकर निपटा डालते। सुबह की ताज़गी दिन चढ़े कहाँ?

''मैं ज़रा घर जा रही हूँ।''

उन्होंने 'शौक से' वाली भंगिमा में सिर हिलाया और पुनः फ़ाइलों में गरदन गड़ा अन्तर्धान हो गए।

वह बाहर आई। आकर स्टूल पर बैठे हुए रामलाल से उसने पूछा, ''साहब केबिन में हैं?''

''हैं न, मैडम! सदैव की भाँति चुस्त रामलाल तत्परता से स्टूल छोड़कर उठ खड़ा हुआ।

एक पल के लिए असमंजस से घिरी वह दरवाजे का हैंडिल पकड़े हुए ठिठकी, फिर दरवाजा ठेलकर भीतर दाखिल हो गई।

प्लेटफार्म पर बंबई घूमने और बाज़ार करने आए गृहस्थों और सैलानियों की भीड़ थी। स्कूली किशोर–किशोरियों की भी।

लगी हुई ट्रेन के तमाम डिब्बों को पार करती हुई वह बीच के 'महिलाओं के लिए' डिब्बे में चढ़ी और बीच वाली सीट की बड़ी खिड़की से सटकर बैठ गई। दीवार के सहारे सिर टेक लिया।

दौड़ती हुई ट्रेन के विशाल डिब्बे में उसे लगा कि वह बुक्का फाड़, सिर धुनकर रोए– डिब्बे में यत्र–तत्र बैठी हुई महिला यात्रियों की परवाह छोड़कर! सिक्के का एक पहलू उसे यह भी लगा कि अकेले में, निपट अकेले में रोना मन के गुबारों को हलका नहीं करता? जैसे अकेले बैठकर हँसना न अवसाद की गाँठें खोलने में समर्थ होता है, न मनोरंजन प्रदान करने में।

हींग और मिर्च–मसालों की तीखी धाँस मे इत्तिला दी कि गाड़ी मस्जिद बन्द पर पहुँच रही है। उसने दरवाज़े की ओर देखा, दड़बे से छूटी मुरगियों की भाँति धकियाती–मुकियाती महिलाओं की रंग–बिरंगी भीड़ डिब्बे में दाखिल हो रही थी।

याद आया, पिछले आठ–दस महीनों का जादुई समय चालीस साल की प्रौढ़ा को अपना औक़ात भुलाने को विवश कर कैसे उदरस्थ कर गया कि वह पाँद के नीचे की धरती छोड़, तैरती–फुदकती अल्हड़ किशोरी–सी सिन्हा...सिन्हामय हो उठी।

घर बहुत छोटा–सा था, गृह–निर्माण भवन का दो कमरों का फ़्लैट। पिता सचिवालय में क्लर्क थे। पिछले महीने हैडक्लर्क बनकर सेवानिवृत्त हुए। चार दिन घर में बैठे तो ऊब उठे। पहले से भी कोशिशें कर रखी थीं। बाद में दौड़–धूप तेज कर दी। दो साल का एक्सटेंशन मिल गया। इतने खुश हुए कि माँ के साथ शिरडी जाकर आए।

घर उसे हमेशा शान्त, ठहरा–ठहरा–सा लगा। अभाव में दिन नहीं बीते किन्तु भरा–

पूरा–पन भी–लोहे की दो पुरानी खाटों, पुराने किस्म का अलमारीनुमा शोकेस, फल्ली पर रखा बड़ा–सा रेडियो, जिसे माँ ने अपने हाथों से बुने क्रोशिए के सुन्दर मेजपोश से ढक रखा था–दो मैले कपड़ों वाली आरामकुर्सियों से अधिक नहीं हो पाया।

क्रोशिए की कंगूरेदार झालर सिर्फ धोने–भर के लिए दरवाज़ों के चौखटों से अलग की जाती। माँ ने उस झालर में छोटे–छोटे हाथी बुने थे, जो बचपन में उसे हवा में झूलते बहुत अच्छे लगते थे। बड़े होने पर मूर्खता की सीमा तक हास्यास्पद! हाँ, माँ का रसोईघर भरापूरा था। नीले आइल पेंट से रंगी हुई धुँआई फल्लियों पर कतार से सजे हुए स्टील के डिब्बे, कटोरियाँ, थालियाँ, पतीले उसे हमेशा बरतनों की सुसज्जित दुकान–से प्रतीत होते।

मैट्रिक पास करने के बाद जैसे ही उसे रेलवे की नौकरी मिली, उसने बरसों पुराने घर के पुरानेपन को बदलने की मुहिम शुरू कर दी।

नई तिपाई, कुछ सलीके की बाँस की कुर्सियाँ, अँगीठी के धुँए से मटमैली घड़ी दीवारों पर हल्का सफेद डिस्टेम्पर, हैंडलूम के छूट के परदे...उसकी योजना सुनकर माँ एकदम संजीदा हो उठी–

''तुम्हार काय करायचा ते तुम्हीं स्वतः चया घरी जाऊन करा।''

(तुम्हें जो भी करना है, वह अपने घर जाकर करना)। तीनों लड़कियों के लिए यह उनका ब्रह्मवाक्य था। उनकी गृहस्थी में हस्तक्षेप करने की सोचते हो वे ढाल–तलवार उठा अपनी सत्ता की हिफ़ाज़त के लिए लक्ष्मीबाई का रूप धर लेतीं। माँ की सन्तुष्टि तीनों को अखरती; मगर वह यही सोचकर विस्मित हो उठती कि आभावों के वार को वे अपनी आत्मसन्तुष्टि की ढाल से कितनी सहजता से ध्वस्त–निरस्त्र कर देतीं कि उन्हें कहीं किसी चीज की कमी ही न सालती।

लेकिन कहीं कोई कमी उसे खलती। शुभा, मालिनी यहाँ तक कि दादा (बड़े भाई)– सब अपनी–अपनी घर गृबस्थी में अपनी सत्ता जीते हुए, अपना मनपसन्द करने लिए चले गए। एक वही बच रही–सिर्फ वही–माँ की सत्ता तले। उनके नियम–धैर्य के अंकुश में। जहाँ अब भी मात्र एक कैलेंडर टाँग देने पर माँ घिसे रिकार्ड–सी वही वाक्य दोहराने लगती। और वह स्वयं को दूध से निकली मक्खी की भाँति फिंकी पाती।

दादा की शादी के बाद उसका नम्बर था, लेकिन हर बार बात बिगड़ गई। माँ जगह–जगह उसे ले जाकर लड़कों को दिखाती और लोग थे कि छोटी शुभा और मँझली मालू का रिश्ता माँगने लगते। उसके लम्बोत्तरे चेहरे ने, ऊँची नाक के नीचे धँसी–धँसी आँखों ने, होठों से हमेशा बाहर निकलने वाले दाँतों ने, उसे कभी साखर पूड़ा (सगाई) की सम्भावनाओं तक नहीं पहुँचने दिया। माँ शुभा और मालू को कब तक रोकतीं। जबकि हर जगह इस बात का दाना डालना न भूलतीं कि रेलवे की पक्की नौकरी में सुन्नी साढ़े पाँच सौ रुपए महीने कमा रही है। भायखला में उसे एक कमरे का रेलवे क्वार्टर भी मिला हुआ है, जिसका कि उसे सवा दो सौ रुपए भाड़ा मिल रहा है। किन्तु घर और नौकरी का जबरदस्त प्रलोभन भी उसके लिए वर हासिल करने में असमर्थ रहा।

हाँलाकि कइयों ने मौके–बेमौके इस ढीलेपन की ओर दबा–दबा संकेत भी किया कि मँझली और छोटी के ब्याह से निपट जाने के उपरान्त पिताजी ने उसके ब्याह के लिए अपेक्षित परिश्रम नहीं किया। घर में प्रतिस्पर्धियों के अभाव में रिश्ता पटना मुश्किल नहीं। मावसी (मौसी) ने तो खुलकर कटाक्ष किया कि भूख में टेढ़ी–मेढ़ी चपातियों के बीच में नर्म, मुलायम, गोल चपाती खींच लेना लोगों का स्वभाव है, मगर शेष टेढ़ी–मेढ़ी के बीच कौन–सा

विकल्प बचता है?

मालू की विदा–विदाई वाली साँझ का वह जहरीला दंश नीले चकत्ते–सा फैलता उसकी समूची देह और चेतना की अपनी गिरफ्त में लेता, उसे अचानक टीसों के जंगल में लावारिस छोड़ गया था।

वह चिवड़ा और लड्डू की तश्तरी मालू की सास को साग्रह थमाकर अन्य मेहमानों की ख़ातिरदारी के लिए आगे बढ़ी ही थी कि माँ से किए गए मालू की सास के प्रश्न के उत्तर में माँ का तर्क सुन उसके तश्तरी बढ़ाते हाथ काँप गए– ''जिद्दी है, ब्याह के लिए तैयार ही नहीं होती। बिरादरी में पचासों लड़के देखे हमने, मगर इसकी ना तो ना !''

माँ ने इस झूठ के सहारे अपनी विवशता या अकर्मण्यता छिपाई या उन तिरस्कारियों की जमात में पैंतरा बदल स्वयं भी खड़ी हो गई, जिन्होंने उसकी बदसूरती के बहाने उसे सामान्य–स्त्री जीवन के अधिकारों से वंचित कर ठीकरे सदृश रास्ते से दूर फेंक दिया।

बाशबेशिन पर आँसू धोने आई तो एक क्षण को विवेक ने धिक्कारा कि क्या वह माँ के प्रति कठोर और दुराग्रही होकर नहीं सोच रही? लोकापवादों से बचने और उसे बचाने के लिए उनके पास और कौन–सा अस्त्र शेष है।

उसने सोचा। बहुत सोचा। मानसिक क्लेशों और लोकापवादों से स्वयं और माँ–पिताजी को मुक्त रखने के लिए वह स्त्रीत्व की सार्थकता को निहायत दकियानूसी और पारम्परिक परिभाषा से अलग हो पूर्णतः नई दिशाओं का अन्वेषण करेगी।

वह आत्मनिर्भर है। अपनी बचत से एक छोटा, सुन्दर–सा घर ख़रीदेगी। नहीं भी ख़रीद पाई तो सरकारी क्वार्टर है उसके पास। फिर भी अपना निजी घर होना महत्त्व रखता है। भविष्यगत सुरक्षा की दृष्टि से भी। उस घर के आँगन की रौनक के लिए अनाथाश्रम से बेहद बदशक्ल बच्ची को गोद लेगी। वह माँ बनेगी। स्त्रीत्व के इस पक्ष से वह वंचित नहीं रहेगी। बच्ची को पालेगी–पोसेगी, उसकी फुँदने जैसी चोटियों में सेवंती की वेणी गूँथेगी। उसके लिए रंग–बिरंगे परकर–पोलकर (लहंगा–चोली) सिलवाएगी। चीनी गुडिया–सी उसकी बिटिया आँगन में रुनझुन करती थिरकेगी– ''नाचे रे मूरा आवै चवै नाच।''

मन दृढ़ हो उठा। एक सुखद तन्मयता उसके चेहरे पर आब–सी उतर आई। उसी रोज़ रात को उसने माँ और पिताजी को अपने निश्चय से अवगत कराया। बता दिया कि अपने इस निर्णय की जानकारी उसने चिट्ठी लिखकर दादा को पहले ही दे दी है।

आराम कुर्सी पर अधलेटे पिता मुँह में पान भरे हुए, 'स्त्री' का दीपावली विशेषांक पढ़ रहे थे। यह उनकी तीस साल पुरानी आदत थी–खाना खा चुकने के उपरान्त पत्रिका या अख़बार पढ़ना। बाहर घूमना उन्हें विशेष पसंद नहीं। उनकी इसी आदत से ऊबकर माँ उन्हें 'घर–घुसरा' विशेषण से विभूषित करती रहतीं।

''तुम्हारी बात सुन ली।''

आरामकुर्सी में हल्की चरमराहट हुई। सीधे होते हुए उन्होंने पत्रिका अपनी लम्बी जाँघिया वाली खुली टाँगों पर औंधाई। आँखों का चश्मा जाँघिए की नाख़ूनी से रगड़ा और बोले, ''मैं तुमसे एक बेहद ज़रूरी बात करना चाह रहा। माँ ने तुम्हें उस बाबत कुछ बताया?''

यह उसके निर्णय की प्रतिक्रिया नहीं।

सुन्नी ने माँ की ओर साभिप्राय देखा। पिता के कहने के बावजूद माँ का चेहरा निर्विकार दिखा। बस, इतना महसूस हुआ कि उनका चेहरा कुछ ज़र्द है और गालों के नीचे की ख़दी हुई–सी दो–तीन झुर्रियाँ और दिनों की अपेक्षा अधिक गहरा आई हैं। उसे यह भी

लगा कि इसकी वजह उसका निश्चय भी हो सकता है या कमरे की पीली रोशनी।

माँ की यह आदत उसे बड़ी अजीब लगती है, अखरने की सीमा तक कि अक्सर तो बातें उन्हें बतानी या कहनी चाहिए, वे पिताजी से कहलवाती हैं।

चश्मा काफी देर तक रगड़ने के पश्चात् पिताजी ने नाक पर चढ़ा लिया, ''देवेन्द्र से तो तुम परिचित हो न?'' कहकर वे रुके। चश्मे के भीतर से उनकी मुँह चुराती दृष्टि ने उसके चेहरे को अपनी वृद्ध, नसें उभरी उँगलियों से टटोला। वह सिर झुकाए, सरौते से सुपारी कतरती माँ को देखने लगी। माँ उसे दिखाई नहीं पड़ रहीं। आँखों के सामने साबुनी बुलबुलों के छत्ते दौड़ रहे। एक साथ तमाम रोलरों का दबाव उसकी गर्दन पर उतर आया। पिताजी का तात्पर्य? देवेन्द्र को वह भली–भाँति जानती है। पड़ोस की भानूबेन का वह मँझला देवर है। जन्म से ही एक टाँग से लाचार।

''उसके लिए भानूबेन एक अच्छी उम्र की लड़की खोज रहीं। तुम्हारे विषय में भानूबेन ने ख़ुद प्रस्ताव रखा है। लड़का पढ़ा–लिखा कम सही, लेकिन सात–आठ सौ महीने कमा रहा। बोरीवली में अपना घर भी ले लिया। तुम्हें पसन्द भी बहुत करता है।'' कहते–कहते वे एकाएक रुक गए। चश्मा उतारकर उन्होंने फिर से काँच को जाँघिए की नाखूनी से रगड़ा– ''लँगड़ापन कोई ऐसा ऐब नहीं, सुन्नी। गल्ले की दुकान उसकी अपनी है। एक में बड़े भाई के संग साझेदारी है। अपने मामूली–से खोट से दुखी वह तुझे हमेशा सिर–आँखों पर रखेगा।''

लोहे की चारपाई के सिरहाने टिकी उसकी पीठ जैसे गरम चिमटे की छुअन से तड़की। पिताजी को एक्सटेंशन कैसे मिला? उनका दिमाग अब सोचने–समझने के काबिल नहीं रहा, वरना वह उसे किसी लूले–लँगड़े की बैसाखी बनाने पर न उतर आते।

बिल्डिंग की सीढ़ियों पर, जब कभी देवेन्द्र उसकी बगल से गुज़रा, मिर्च–मसालों की तेज़ गंध और गल्लों की मटियाई सीलन उसकी नाक को बिदका गई। अक्सर उसका मन किया कि वह पर्स में से रूमाल निकालकर नाक पर रख ले और तेज़ी से चढ़ती अपने घर में दाखिल हो जाए। पायजामे पर कमीज़.....यह भी कोई पहनावा है। वह बदशक्ल ज़रूर है, किन्तु पढ़ी–लिखी और अच्छी पोस्ट की बदशक्ली इतनी आम भी नहीं कि कोई ऐरा–गैरा–नत्थू–खैरा अपनी औक़ात भूलकर उससे शादी का ख़्वाब देखने लगे।

वह उफनी–उफनी बदहवास–सी बालकनी में चली आई। ग्रिल से चेहरा टिका फफक पड़ी। माँ–पिता क्यों....क्यों उसे अनपढ़, गँवार, मिर्च–मसालों से भरी बोरी में बन्द कर देना चाहते हैं? क्यों नहीं उसके निश्चय की पीठ थपथपाते कि हुई न यह एक बात लीक से हटकर हिम्मत करने और जीने की ! उत्तरदायित्व न निभा पाने की ग्लानि उन्हें जिस–तिस के सिर मढ़ देने के लिए अन्धा कर देगी, इसकी कल्पना नहीं थी उसे। मावसी (मौसी) ने कितनी बार जोर दिया कि अख़बार में उसके ब्याह का विज्ञापन दे दो, ढाई–तीन सौ खर्चा आएगा, मगर हो सकता है, कोई माफिक परिणाम निकल आए। मगर 'जाऊँगा, जाऊँगा' कहने वाले पिता उठकर कभी किसी अख़बार के दफ़्तर नहीं गए।

उन्हीं दिनों सिन्हा उसके विभाग में आया।

मिसेज पंजवानी उसे तीन–चार विदेशी साडियाँ दिखा रही थीं। उनके भाई हांगकांग से आए थे और बेचने के ख़याल से काफ़ी विदेशी सामान अपने संग लाए थे। पंजवानी कुछ साड़ियाँ नाइटियाँ उन लोगों को दिखाने और बेचने के लिए कार्यालय लाई थीं। यह एक बैंजनी रंग की सादी आकर्षक साड़ी को बार–बार उलट–पुलट रही थी और अपने मन को तोल रही थी कि अचानक एक मर्दाने भारी स्वर ने उसे सम्बोधित किया, ''मुझे सिन्हा कहते

हैं, सुनीता जी!''

साड़ी छोड़कर वह शिष्टता निभाने के लिए कुर्सी से उठ खड़ी हुई।

हाथ जोड़ते ही आँखों में ताज़गी घुल गई। लम्बा छरहरा कद। चौड़े कन्धे। गेहुँआ रंग चमकीली भेदती आँखों पर गोल्डन फ्रेम का बायफोकल चश्मा। कुल मिलाकर आकर्षक आवाज़ और अन्दाज से सठा–गठा व्यक्तित्व। विभाग के बुसियाएपन को झाड़ता, स्फूर्ति देता। मिलकर खूब भला लगा।

सहकर्मी गुप्ताजी और भार्गव साहब विभागीय सदस्यों से परिचय की औपचारिकता पूरी करवाने सिन्हा को लेकर निकले थे। श्रीमती पंजवानी की जिज्ञासा पर कि विभाग में सिन्हा की नई नियुक्ति हुई है या तबादले पर आए हैं, सिन्हा ने तपाक से उत्तर दिया कि वह सरकारी मेहरबानी से तबादले पर आया है और जब तक उस पर सरकारी मेहरबानी बनी रहेगी, वह उनके बीच काम करने का सौभाग्य हासिल करता, धन्य होता रहेगा।

भार्गव साहब ने सिन्हा की विनम्रता पर चुटकी–सी ली–'साहब, बम्बई का तबादला भाग्य की लाटरी है। जिसकी निकल आए वह टिकट ख़रीदना बन्द कर देता है। जिसकी न निकले वह अपने नम्बर की उम्मीद में थोक में टिकट ख़रीदकर भाग्य आजमाता रहता है, बन्धु। आ गए हो तो घाटे में नहीं रहोगे, लिख लो।'

''तो मैं टिकट ख़रीदना बन्द कर दूँ न, भार्गव साहब!''

''पक्का ! समझिए, लग गई !''

और वह भी उनके ठहाकों में शरीक हो बड़ी देर तक हँसती रही। गुप्ताजी के आग्रह पर उसने अपनी मेज पर चाय मँगवाई। साथ में उम्दा बटाटा–बड़ा भी।

सिन्हा को बटाटा–बड़ा खूब भाया। उसने इच्छा प्रकट की कि वह बंबई का प्रसिद्ध ऊसव–पाव खिलाने गिरगाँव के एक ईरानी रेस्टोरेंट में ले चलेगी, जहाँ बहुत स्वादिष्ट ऊसल बनता है और आज भी डेढ़ रुपए में आदमी आराम से अपना पेट–भर सकता है!

बच्ची और देवेन्द्र का फितूर, दोनों ही दिमाग से खिसक गए।

सिन्हा के साथ मिलना–जुलना पहले विभागीय शिष्टतावश हुआ। फिर साथ–साथ चाय पीने का सिलसिला शुरू हो गया। लंच भी भी वे अकसर साथ खाने लगे। कार्यालय छूटते ही चारों लिफ्टों के सामने लम्बी–लम्बी पंक्ति होती। वे बजाय पंक्ति में खड़े हों, समय गँवाने के लिए आपस में बतियाते हुए, सीढ़ियाँ उतर लेते। यह रोज़ की बात हो गई। घनिष्ठता कुछ और बढ़ी। वे 'ओपन एयर कैफ़ेटेरिया' में एस्प्रेसो पीते या गेटवे तक पैदल घूमते हुए वापस स्टेशन।

कार्यालय ही नहीं, घर में भी उसके भीतर के बदलाव को माँ और पिता ने लक्ष्य किया। हाँलाकि उन दोनों के मध्य भी तक ऐसा कुछ नहीं घटा, जिसे वह आसक्ति का नाम देती। अलबत्ता सिन्हा की मित्रता ने उसे अपने प्रति सजग अवश्य कर दिया। वह अपने 'लुक' का ख़याल रखने लगी। चेहरे के उन तमाम अभिशापों को, जिन्हें वह चालीस वर्षों से हीनता के रूप में ढोए रही, ब्यूटीपार्लर के वातानुकूलित कमरों में परिष्कृत करने लगी। अपने बढ़े हुए दाँतों पर उसने तार का फ्रेम चढ़वा लिया। हाँलाकि दंत–चिकित्सक का कहना था कि यह फ्रेम उसने उसके जोखिम पर चढ़ाया है। इस उम्र में दाँतों पर फ्रेम चढ़ाने से जड़ें ढीली पड़ जाने की सौ फीसदी आशंका होती है। आइब्रोज, फेशियल, स्टीम बाथ के लिए वह नियमित जाने लगी। कुछ रोज 'फ़िगरेट' भी गई– देह का फालतू मांसलता कम करने के ख़याल से। अपने रख–रखाव के प्रति अब तक बरती गई उपेक्षा उसे अपनी मूर्खता और

अनाड़ीपन प्रतीत हुई। एक सबसे महत्त्वपूर्ण काम उसने यह किया कि घर में ड्रेसिंग टेबल ख़रीद लाई।

सिन्हा को उसने माँ और पिताजी से भी मिलवाया। प्रतिक्रिया में माँ मौन साधे रहीं। पिता बहुत खुश हुए। अत: कार्यालय में अपने सन्दर्भ में चल रही कानाफूसी के प्रति लापरवाह बनी रही।

सिन्हा के विषय में, उसके घर के विषय में वह सिन्हा की ज़बानी सब कुछ जान गई।

सिन्हा चौदह वर्ष का था तो उसके पिता नहीं रहे। माँ की घर से, पिताजी के रहते ही नहीं पटी, न रहने के बाद सारी स्थितियाँ प्रतिकूल हो उठी। माँ उसे, नीलू और बबलू को लेकर विधवा मौसी के घर चली आई। एक छोटे–से कस्बे में मौसी का दोमंजिला मकान था। ऊपर का हिस्सा उन्होंने किराये पर उठा रखा था। नीचे तीन–चार कमरों में उनकी गृहस्थी मिसटी फैली हुई थी। दालान में वे अपनी हाथ मशीन चौकी पर रखे, मोहल्ले में सिलाई–स्कूल चलातीं।

डिग्री लेने के पश्चात उसे रेलवे में सहायक हिन्दी अफ़सर की पोस्ट मिल गई। यह कस्बे से शहर चला आया। रेलवे क्वार्टर मिलते ही पूरे परिवार को लिवा लाया। मौसी को भी वह ज़िद करके अपने साथ लाया। उनकी दोनों आँखों में मोतियाबिन्द पक रहा था। मौसी के पास जो कुछ था, इन्हीं लोगों के पीछे स्वाहा हो गया। यहा–वहाँ से उधार–उधूर करके उसने उनकी आँखों का आपरेशन ही नहीं करवाया, विदेशी लेंस भी लगवाया। मौसी लाल–लाल आँखों से खूब रोई...

नीलू को मेडिकल में दाखिला मिल जाने से तंगी का असमाप्त सिलसिला उसकी उम्र निगलने लगा। मौसी उसके लिए अक्सर दुखी हो उठतीं थी कि कस्बे में होता तो अब तक वे पोतों–पोतिनों का मुँह देख लेतीं।

नीलू के मेडिकल को तीसरा साल लगा नहीं कि उसका तबादला लखनऊ से इगतपुरी हो गया। ठीक वर्ष–भर बाद पदोन्नत होकर बंबई। नीलू के होस्टल का खर्च ही झेल पाना मुश्किल हो रहा था कि यहाँ आकर बबलू को गणित और मराठी में ट्यूशन की आवश्यकता अनुभव होने लगी। खर्च में कहाँ से कतर–ब्योंत करे, समझ नहीं पा रहा। बहरहाल ज़िम्मेदारियों से वह नहीं घबराता, न आन पड़ी समस्या से पीठ दिखाने की आदत है उसकी।

''तुम बताओ, सुन्नी, मैं अपने बारे में कब सोचता ! कब अपने–आपको अपने लिए नितान्त वैयक्तिक होकर जीता?''

उस शाम न जाने उसे क्या हुआ कि वह एकदम से भावुक हो उठा। मेज पर अनर्गल लकीरें खींच रही सुन्नी की उँगलियों को उसने अपनी हथेलियों में अचानक भींच लिया, ''मैं तुमसे शादी करना चाहता हूँ, सुन्नी! तुम....''

सिहरन का ज्वार उसकी तिरस्कृत देह में चैती के नशीले आरोह–अवरोह की भाँति संचरित होने लगा। वे कैपिटल सिनेमा के निकट 'ओपन एयर कैफ़ेटेरिया' में बैठे हुए थे। अचानक उसे महसूस हुआ कि सिन्हा ने उसकी हथेली को नहीं, भीड़ में उसके समूचे अस्तित्व को सँदली बाँहों के घेरे दे दिए। सहमति की हज़ार–हज़ार घुँघरुओं की रुनझुन उसके तन–मन में झनक उठी। शब्द भीतर–ही–भीतर गले में घुमड़कर रह गए। अनिश्चय नहीं था, न कोई धुँधलका। उसने हामी में हौले–से सिर को जुम्बिश दी।

उत्साहित पिता ने उमंग से सारे रिश्तेदारों को उसके और सिन्हा के बारे में लिख

दिया। दादा ने 'साखरपूड़ा' (सगाई) की ज़िद की, किन्तु सिन्हा ने एकदम मना कर दिया, ''रिवाज न मैं अपने यहाँ के करूँगा, न तुम्हारे यहाँ के मानूँगा।''

कार्यालय में लोगों ने उन्हें नहीं छोड़ा।जिस दिन लोगों को उनके निर्णय के विषय में ज्ञात हुआ, कैंटीन में जबरदस्ती चार–पाँच क्रेट साफ्ट ड्रिंक का आर्डर हो गया। सिन्हा बार–बार कहता रहा, ''भैया अभी से हमारा दिवाला क्यों पीट रहे हो? शादी पर पी लेना।'' मगर किसी ने उसकी एक न सुनी। मिसेज पंजवानी ने 'पेस्ट्री' का आर्डर ऊपर से भिजवा दिया– ''वरी, सुनीता की तरफ से भी तो कुछ होना चाहिए।''

फिर देसाई की ओर से बाईं आँख दबाकर खुसफुसाई, ''डबल स्वीट सिक्सटीन होने के बाद शादी कर रही है सुनीता। कंजूसी काहे की।''

हफ़्तो वे मकान खोजते रहे।

किराये पर उठाए रेलवे क्वार्टर में रहना सिन्हा को पसन्द नहीं था। न आस–पड़ोस ढंग का, न रहन–सहन स्तर का। गोरे गाँव की चाली में वह उसे ब्याह कर ले जाने को वैसे ही राजी नहीं था। पूरे परिवार के साथ डेढ़ कमरे के घर में गुजर होगी भी तो कैसे? ब्याह से पहले ही कोई अच्छी, स्थाई जगह हल के रूप में खोज लेना ज़रूरी लगा। हारकर उन्होंने मलाड में एक थ्री रूम फ़्लैट ओनरशिप पर बुक कर लिया। बारह हज़ार की पहली किस्त सुन्नी ने अपने बैंक–बैलेंस से भर दी। सिन्हा के पास मात्र मेम्बरशिप–भर के लिए रुपए निकले। वे भी उसे इन्तज़ाम करने पड़े। माँ सारे प्रकरण में कुछ उलझी–उलझी–सी बेचैन नज़र आई। अभी से ओनरशिप पर मकान बुक करने की तुक? पैसा जोड़कर रखो। पैसा टेंट में हो तो दरवाज़े, हाथी बँधते समय नहीं लगता। आगे तुम लोगों की मरजी! उन्होंने सिन्हा से भी आपत्ति प्रकट की–''तबादले वाली नौकरी है तुम लोगों की। फिर हो सकता है, प्रयत्न करने और सिफारिश आदि के बूते पर तुम्हें जल्दी ही स्टाफ स्वार्टर मिल जाए।''

सुनकर सिन्हा ने प्रतिवाद किया कि ''कई बैंकों में मैंने हिन्दी अधिकारी के पद के लिए आवेदन कर रखा है। रेलवे की नौकरी में आख़िर रखा ही क्या है। इसलिए स्टाफ क्वार्टर के चक्कर में मैं पड़ना ही नहीं चाहता। जो भी करना है, भविष्य की सोचकर करना है।''

सिन्हा मौसी और माँ को भी उसकी माँ और पिताजी से मिलाने के लिए घर लाया। एक बात उसे करकी–सिन्हा के प्रति पिताजी का दामादीय उत्साह जैसा कुछ उसे अपने सन्दर्भ में उसकी मौसी और माँ के चेहरे पर कहीं नज़र नहीं आया।

तभी अचानक, हवाओं की महकती हुई खुनकी अन्धड़ के प्रलयंकारी तेज थपेड़ों में लहूलुहान हो उसके रोम–रोम में क्रन्दन कर उठी।

कैसे वह बर्फीली शिलाखंड की ढलान पर आत्मघाती गति से दौड़ रही थी। वजह शायद या पूरी तरह से पुरुष सहवास से अस्पर्शित, बावली हो उठी प्रौढ़ता थी, जो अपने ही कगार ढह, ज्वार से उतराई विधवंसकारी मोड़ मुड़ने लगी। मकान के पीछे उसने अपना बैंक–बैलेंस खत्म कर दिया, प्राविडेंट फंड से पैसा निकाल लिया।पालिसी के विरुद्ध क़र्ज। फिर भी सिन्हा ने सोसाइटी में मेम्बरशिप ली तो अपने नाम से ली। वह चुप रही। माँ की कुनमुनाहट के बावजूद –'मकान तेरे नाम लेने में हर्ज? तू मुझे एक छोटा–सा कारण दे?'

कल दु:स्वप्न–सी दोपहर कैसे उसके लिए प्राणलेवा हादसा हो उठी!

पेमेंट्स लिस्ट पहुँचाने वह एकाउन्ट्स विभाग में जा रही थी कि अचानक सिन्हा और स्वामीनाथन की पारस्परिक बातचीत ने भरे गिलास–सा उसे जमीन पर पटक दिया।

''कमाल है तेरा ! शादी करने के लिए तुझे कोई और लड़की नहीं मिली? शी लुक्स

लाइक पक्का तालीवाला! तेरह साल हो गए रेलवे में नौकरी करते। विभाग में से कोई चाय पीने का वक़्त भी ज़ाया नहीं करना चाहता उसके साथ और एक तू......मुझे भार्गव ने बताया तेरी शादी के बारे में!''

''छोड़, यार ! तालीवाली ही सही। घर की हालत तुझसे छिपी नहीं।'' प्रतिवाद करते हुए सिन्हा क्षणांश झिझका।

सुन्नी की काँपती टाँगें देह का बोझ उठाने से इन्कार करने लगीं।

''सोच, आठ सौ रुपए महीने कमाने वाली कहाँ मिलेगी? सौदे की कोई शक्ल–सूरत नही होती, मेरे यार।मैं जीवन और व्यावहारिकता को एक–दूसरे का पूरक मानता हूँ। नहीं तो देखने में ठीक–ठाक आशा घर चलाने के मामले में अधिक सही लड़की है। मौसी अभी भी चाहती है कि मैं आशा से ब्याह कर लूँ।''

आगे वह सुन भी नहीं सकती थी।खड़ी भी नहीं रह सकती थी।

ऊपर आने तक उसने निर्णय ले लिया था कि वह सिन्हा से ब्याह नहीं करेगी। और यह नौकरी भी नहीं!

''क्या बात है, सुनीता? बड़ी परेशान नज़र आ रही हो?'' उसके केबिन में दाखिल होते ही उसके उड़े हुए चेहरे को देखकर, निदेशक मिश्राजी ने चिन्तित होकर प्रश्न किया था।

उनके शब्दों की वजनी सहानुभूति ने उसे रुआँसा कर दिया। फिर जवाब में क्या कहती? न सूखे होंठों में कोई हरकत पैदा हुई, न तालू से जा चिपकी ज़बान ही ढीली। बस, सहसा संजो, त्यागपत्र अवश्य उसने उनकी ओर बढ़ा दिया। ऐसा एकदम से न कर डालती तो शायद त्यागपत्र तहाए हुए रूमाल–सा मुट्ठी में पसीजता उसके संग लौट जाता।

मिश्राजी ने पत्र पर सरसरी निगाह डाली और विस्मय से भर उठे, ''त्यागपत्र क्यों?''

जवाब में वह सिर झुकाए खड़ी रही।

''विभाग से कोई शिकायत? किसी प्रकार की प्रताड़ना? निस्संकोच कहो!''

कैसे कहे ! उसका हृदय उमड़ा चला आ रहा था–बाढ़ के बढ़ते जल–स्तर की भाँति इंच–इंच अपने में डुबोता। उसकी सँजोई सारी दृढ़ता, निश्चय, आत्मविश्वास इस्तेमाल न होने की जागरूकता ठीक ऐन मौके पर दग़ा दे, उसे निहायत कमज़ोर साबित कर, दयनीय बनाकर छोड़ गई। इस तरह वह मिश्राजी के किसी सवाल को कोई जवाब नहीं दे पाएगी। कोई–न–कोई कारण बताना ही होगा।

प्रकृतिस्थ होने की पूरी कोशिश की उसने, ''सर !मैं शादी करने जा रही हूँ।''

उनकी अनुभवी आँखों ने फौरन भाँप लिया कि सुनीता के इस्तीफ़े के पीछे कहीं कुछ गड़बड़ है। अभी छः महीने पहले एकाउन्ट्स की वाणी मजूमदार ने नौकरी से त्यागपत्र दिया। मगर वाणी लजाती, झिझकती उनके केबिन में आई और मिठाई के एक बड़े–से डिब्बे के ऊपर त्यागपत्र रखकर उसने उनकी ओर बढ़ाया था–''सर, शादी के बाद ज़िम्मेदारियाँ बढ़ जाएँगी। नौकरी सम्भव नहीं होगी।''

सिन्हा और उसके सम्बन्धों की चर्चा से वे अनभिज्ञ नहीं थे, बल्कि सुनीता की शादी की बात सुनकर उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई थी। इस वक़्त सुनीता काफ़ी घुमड़ी–घुमड़ी, असहज लग रही। उन्हें लगा, उनके हाथों में थमाया गया सुनीता का इस्तीफ़ा किसी भावावेथ में आकर लिया गया निर्णय है–किसी अप्रत्याशित ठेस और उससे उत्पन्न उत्तेजना का प्रतिकार पत्र!

''पत्र मेरे पास सुरक्षित रहेगा।'' वे कवर बन्द करते हुए बोले, ''चार–पाँच दिन की

छुट्टी ले लो तो बेहतर है। ठीक से सोच लो। जल्दबाज़ी उचित नहीं। शादी के बाद भी कई लड़कियाँ नौकरी कर रही हैं, बी ईजी...ओ.के!''

वह उठकर केबिन से बाहर आ गई। जानती थी, एक सेकंड के लिए भी और रुक जाती, तो सर के सामने ही फूट पड़ती।

उसके जल्दी घर चले जाने पर माँ को तनिक कौतूहल हुआ, यही अनुमान लगाया कि सुन्नी की तबियत शायद ठीक नहीं।

वे खुद लेटी हुई आराम कर रही थी। ज़्यादा कुछ पूछना उन्हें उचित नहीं लगा। लेटे–लेटे ख़याल आया–तबियत ठीक नहीं तो तनिक चाय के लिए तो पूछ ही लें। अब क्या लेटना! साढ़े चार वैसे भी हो रहे। बरतन करने बाई भी आ ही रही होगी। उठकर रसोई की ओर मुड़ीं। रसोई की कुंडी खोली ही थी कि सहसा दरवाज़े की घंटी बजी।

दरवाज़ा खोला तो सामने ऊपर की छोटी मीनू को खड़ी पाया–''आंटी, सुनीता दीदी का फ़ोन है...हैं...घर में?''

दरवाज़ा ज्यों–का–त्यों खुला छोड़कर उन्होंने कमरे में लोहे के पलंग पर कोहनी से चेहरा ढाँपे सुन्नी को पुकारा, ''सुन्नी, तुझा फ़ोन आला !'' (सुन्नी, तुम्हारा फ़ोन आया)।

वह समझ गई कि फ़ोन किसका होगा। एक बार को मन में आया कि माँ से कह दे कि मीनू से फ़ोन के लिए मना कर दें। फ़िर सोचा, पीठ दिखाने से समस्या हल नहीं होगी। सामना करना ही एकमात्र विकल्प है। मिलने को वह कार्यालय में उससे मिलती हुई आ सकती थी, लेकिन कार्यालय में किसी प्रकार की आपसी कटुता या आरोप–प्रत्यारोप के नंगे नाटक से बचना चाहती थी। फ़ोन पर ऐसी कोई अड़चन नहीं। शायद अपनी बात अधिक ठोस तरीके से व्यक्त कर पाएगी।

चिपचिपाती हथेलियों से उसने रिसीवर उठाकर कानों से लगा लिया। अनुमान सही था–सिन्हा ही था। एकदम उत्तेजित।

''तुम बदशक्ल ही नहीं, बेअक्ल भी हो! रिज़ाइन क्यों कर दिया? घर पर बैठी भाड़ झोंकोगी? और मुझसे बिना पूछे? कोई ज़िक्र नहीं। बोलती क्यों नहीं? शादी के बाद भी तुम्हें नौकरी करनी है, सुन्नी। पारिवारिक जिम्मेदारियाँ मैं अकेले नहीं ढो सकता, सुन रही हो....हैलो !हैलो....''

''मुझे शादी नहीं करनी है तुमसे ! नौकरी इसीलिए छोड़ दी।'' सुन्नी ने रिसीवर क्रेडल से लगा दिया। सीढ़ियाँ उतरकर आई तो माँ आँखों में तमाम प्रश्न भरे, चाय का प्याना लिए उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं।

''कोणाचा फ़ोन होता?''(किसका फ़ोन था)

वह सूखते होंठों और पनियाई मिचमिची आँखों से उन्हें ताकती रही।

साँसे भीतर समा नहीं पा रही। दम बाहर को आ रहा। सहसा वह माँ क कन्धे से लगकर फफक पड़ी। हिचकियों से उसका समूचा शरीर हिलने लगा। उसके टूटे–से शब्द भुरभुरी बर्फ–से माँ के कानों में गलने लगे, ''मैं देवेन्द्र से ब्याह के लिए तैयार हूँ अभी जाकर तुम भानूबेन से कह दो। उन्होंने कहा था न कि देवेन्द्र नौकरी नहीं करवाएगा ! मैं नौकरी छोड़ आई हूँ माँ, मैं अब....''

माँ आवाक–सी उसके बालों को, पीठ को सहलाती रहीं।। कैसे कहें, और किस ज़बान से कहें कि देवेन्द्र की सगाई हो चुकी है.....कि आठ–दस दिन के भीतर उसकी शादी होने वाली है.......

ग्राम

जयशंकर 'प्रसाद'

टन! टन! टन! स्टेशन पर घंटी बोली।

श्रावण मासकी संध्या भी कैसी मनोहरिणा होती है मेघ–माला–विभूषित गगन की छाया सघन रसाल–कानन में पड़ रही है! अंधियारी धीरे–धीरे अपना अधिकार पूर्व–गगन में जमाती हुई सुशासन कारिणी महाराणी के समान, विहंगप्रजागणको सुख–निकेतन में शयन करनेकीआज्ञा दे रही है। आकाशरूपी शासन–पत्र पर प्रकृति के हस्ताक्षर के समान बिजली की रेखा दिखाई पड़ती है........ ग्राम्य स्टेशन पर कहीं एक–दो दीपालोक दिखाई पड़ता है। पवन हरे–हरे निकुंजो में से भ्रमण करता हुआ झिल्ली के झनकार के साथ भरी हुई झीलों में लहरों के साथ खेल रहा है। बूँदियाँ धीरे–धीरे गिर रही हैं। जो जूही की कलियों को आर्द्र करके पवन को भी शीतल कर रही है।

थोड़े समय में वर्षा बंद हो गई। अंधकार–रूपी अंजन के अग्रभाग–स्थित आलोक के समान चतुर्दशी की लालिमा को लिए चंद्र देव प्राची में हरे–हरे तरुवरों की आड़ में से अपनी किरण–प्रभा दिखाने लगे। पवन की सनसनाहट के साथ रेल–गाड़ी का शब्द सुनाई पड़ने लगा। सिग्नलर ने अपना कार्य किया। घंटा का शब्द उस हरे–भरे मैदान में गूंजने लगा। यात्री लोग अपनी गठरी बांधते हुए स्टेशन पर पहुँचे। महादैत्य के लाल–लाल नेत्रों के समान अंजन– गिरी निभ इंजिन का अग्र स्थित रक्त–आलोक दिखाई देने लगा। पागलों के समान बड़बड़ती हुई अपनी धुन की पक्की रेलगाड़ी स्टेशन पर पहुँची गई। धड़ाधड़ यात्री लोग उतरने–चढ़ने लगे। एक स्त्री की ओर देखकर फाटक के बाहर खड़ी हुई दो औरतें जो उसकी सहेली मालूम देती हैं– रो रही हैं, और वह स्त्री एक मनुष्य के साथ रेल में बैठने को उद्यत है। उनकी क्रंदन– ध्वनि से स्त्री दीन–भाव से उनकी और देखती हुई बिना समझे हुए, सेकंड क्लास की गाड़ी में चढ़ने लगी; पर उसमें बैठे हुए बाबू साहब– 'यह दूसरा दर्जा है, इसमें मत चढ़ो' कहते हुए उतर पड़े, और अपना हंटर घुमाते हुए स्टेशन से बाहर होने का उद्योग करने लगे।

विलायती पिंक का वृचिस पहने, बूट चढ़ाये, हंटिंग कोट, धानी रंग का साफा अंग्रेजी हिंदुस्तानी का महा सम्मेलन बाबू साहेब के अंग पर दिखाई पड़ रहा है। गौर वर्ण, उन्नत ललाट–उनकी आभा को बढ़ा रहे हैं। स्टेशन मास्टर के सामना होते ही शेकहैंड करने के उपरांत बाबू साहब से बातचीत होने लगी।

स्टेशन मास्टर ''आप इस वक्त कहां से आ रहे हैं?''

मोहन–कारिदों ने इलाके में बड़ा गड़बड़ मजा रखा है इसलिये मैं कुसुम–पुर–जो कि हमारा इलाका है–इंस्पेक्शन के लिएजा रहा हूँ।

स्टेशन मास्टर – ''फिर कबपलटियेगा?''

मोहन– दो रोज में! गुड इवनिंग!''

स्टेशन मास्टर, जो लाइन–क्लियर दे चुके थे, गुड इवनिंग करते हुए अपने ऑफिस में घुस गये।

बाबू मोहनलाल अंग्रेजी काठी से सजे हुए घोड़े पर जो पूर्व ही स्टेशन पर खड़ा था

सवार होकर चलते हुए।

2

सरल स्वभाव ग्रामवासिनी कुल कामिनीगण का सुमधुर संगीत धीरे–धीरे आम्र–कानन में से निकलकर चारों और गूंज रहा है। अंधकार गगन में जुगनू–तारे चमक–चमक कर चित्तको चंचल कर रहे हैं। ग्रामीण लोग अपना हल कंधे पर रखे बिरहा गाते हुए, बैलों की जोड़ी के साथ, घर की ओर प्रत्यावर्त्तन कर रहे हैं।

एक विशाल तरुवर की शाखा में झूला पड़ा हुआ है, उस परचार महिलाएँ बैठी है, और पचासों उसको घेर कर गाती हुई घूम रही हैं। झूले के पेंग के साथ 'अबकी सावन सइयाँ घर रहु रे' की सुरीली पचासों कोकिल–कंठ से निकली हुई तान पशु गणों को भी मोहित कर रही है। बालिकाएँ स्वच्छंद भाव से क्रीड़ा कर रही हैं। अकस्मात् अश्व के पद शब्द ने उन सरला कामिनियों को चौंका दिया। वे सब देखती हैं, तो हमारे पूर्व–परिचित बाबू मोहनलाल घोड़े को रोक कर उस पर से उतर रहे हैं। वे सब उनका भेष देख कर घब घबड़ा गयीं और आपस में कुछ इंगित करके चुप हो गई ।

बाबू मोहनलाल ने निस्तब्धता को भंग किया, और बोले– ''भद्रे यहाँ से कुसुमपुर कितनी दूर है? और किधर से जाना होगा?''

एक प्रौढ़ा एक ओर दिखा कर बोली– ''इहाँ से डेढ़ कोस बाय, इहै पैड़वा जाई।''

बाबू मोहनलाल उसी पग डंडी से चले। चलते–चलते उन्हें भ्रम हो गया, और वह अपनी छावनी का पथ छोड़कर दूसरे मार्ग से जाने लगे। मेघ घिर आये, जल वेग से बरसने लगा अंधकार और घना हो गया। भटकते–भटकते वह एक खेत के समीप पहुँचे; वहां उस हरे–भरे खेत में एक ऊँचा और बड़ा मचान था, जो कि फूस से छाया हुआ था, और समीप ही में एक छोटा सा कच्चा मकान था, उस मचान पर बालक और बालिकाएँ बैठी हुई कोलाहल मचा रही थीं। जल में भीगते हुए भी मोहनलाल खेत के समीप खड़े होकर उनके आनंद–कलरव को श्रवण करने लगे।

भ्रांत होने से उन्हें बहुत समय व्यतीत हो गया। रात्रि अधिक बीत गई। कहाँ ठहरें? इसी विचार में वह खड़े रहे, बूंदें कम हो गयीं। इतने में एक बालक अपने मलिन बसन के अंचल की आड़ में दीप लिए हुए उसी मचान की ओर आती हुई दिखाई पड़ी।

3

बालिका की अवस्था 15 वर्ष की है। आलोक से उसका अंग अंधकार–घन में विद्युल्ले खाकी तरह चमक रहा था यद्यपि दरिद्रता ने उसे मलिन कर रखा है, पर ईश्वरीय सुषमा उसके कोमल अंग पर अपना निवास किए हुए हैं ई मोहनलाल ने घोड़ा बढ़ाकर उससे कुछ पूछना चाहा, पर संकुचित होकर ठिठक गये। परंतु पूछने के अतिरिक्त दूसरा उपाय ही नहीं था अस्तु, रूखेपन के साथ पूछा–कुसुमपुर का रास्ता किधर है?

बालिका भव्य मूर्ति को देखकर डरी पर साहस के साथ बोली– ''मैं नहीं जानती।'' ऐसे सरल नेत्र–संचालन से इंगित करके उसने ये शब्द कहे कि युवक को क्रोध के स्थान में हँसी आ गई और कहने लगा– तो जो जानता हो, मुझे बतलाओ, मैं उससे पूछ लूँगा।

बालिका – हमारी माता जानती होंगी।

मोहन – इस समय तुम कहाँ जाती हो?

बालिका–(मचान की ओर दिखाकर) ''वहाँ जो कई लड़के हैं, उनमें से एक हमारा भाई है, उसी को खिलाने जाती हूँ।''

मोहन– बालक इतनी रात को खेत में क्यों बैठा है?

बालिका– वह रात–भर और लड़कों के साथ खेत में ही रहता है।

मोहन–तुम्हारी मां कहाँ है?

बालिका– चलिये, मैं लिवा चलती हूं।

इतना कहकर बालिका अपने भाई के पास गयी, और उसको खिलाकरतथा उसके पासबैठे हुए लड़कों को भी कुछ देकर उसी क्षुद्र–कुटीराभिमुख गमन करने लगी। मोहनलाल उस सरल बालिका के पीछे चले।

4

उस क्षुद्र कुटीर मैं पहुँचने पर एक स्त्री मोहनलाल को दिखाई पड़ी, जिसकी अंग प्रभा स्वर्ण–तुल्य थी, तेजोमय मुख्य–मंडल, तथा ईषत उन्नत अधर अभिमान से भरे हुए थे, अवस्था उसकी 50 वर्ष से अधिक थी। मोहनलाल की आंतरिक अवस्था, जो ग्राम्य जीवन देखने से कुछ बदल चुकी थी उस सरल गम्भीर तेजोमय मूर्ति को देख और भी सरल विनययुक्त हो गयी। उसने झुककर प्रणाम किया। स्त्री ने आशीर्वाद दिया और पूछा–बेटा कहाँ से आते हो?

मोहन– मैं कुसुमपुर जाता था, किंतु रास्ता भूल गया....।

'कुसुमपुर' का नाम सुनते ही स्त्री का मुख्य – मंडल आरक्तिम हो गया और उसके नेत्र से दो बूंद आँसू निकल आये। वे अश्रु करुणा के नहीं, किंतु अभिमान के थे।

मोहनलाल आश्चर्यान्वित होकर देख रहे थे। उन्होंने पूछा–आपको कुसुमपुर के नाम से क्षोभ क्यों हुआ?

स्त्री– बेटा! उसकी बड़ी कथा है, तुम सुन कर क्या करोगे?

मोहन.– नहीं, मैं सुनना चाहता हूँ, यदि आप कृपा करके सुनावें।

स्त्री– अच्छा, कुछ जलपान कर लो, सब सुनाऊँगी।

पुन: बालिका की ओर देखकर स्त्री ने कहा – कुछ जल पीने को ले आओ।

आज्ञा पाते ही बालिका उस क्षुद्र गृह के एक मिट्टी के बर्तन में जल ले आई, और मोहनलाल के सामने रख दिया। मोहनलाल उस शर्बत को पान करके फूस की चटाई पर बैठकर स्त्री से कथा सुनने लगे।

5

स्त्री कहने लगी– हमारे पति इस प्रांत के गण्य भूस्वामी थे, और वंश भी हम लोगों का बहुत ऊच्च था। जिस गांव का अभी आपने नाम लिया है, वही हमारे पति की प्रधान जमींदारी थी। कार्यवश कुंदनलाल नामक एक महाजन से कुछ ऋण लिया गया। कुछ भी विचार न करने से उनका बहुत रुपया बढ़ गया और जब ऐसी अवस्था पहुँची तो अनेक उपाय करके

हमारे पति धन जुटाकर उनके पास ले गये, तब उस धूर्त ने कहा– ''क्या हर्ज है बाबू साहब! आप आठ रोज में आना, हम रुपया ले लेंगे, और जो घाटा होगा, उसे छोड़ देंगे, आपका इलाका फिर जायगा, इस समय रेहननामा भी नहीं मिल रहा है।'' उसका विश्वास करके हमारे पति फिर बैठ रहे, और उसने कुछ भी न पूछा। उनकी उदारता के कारण वह संचित धन भी थोड़ा हो गया, और उधर उसने दावा करके इलाका– जो कि वह ले लेना चाहता था– बहुत थोड़े रुपये में नीलाम करा लिया। फिर हमारे पति के हृदय में, उस इलाके के इस भाँति निकल जाने के कारण, बहुत चोट पहुँची और इसी से उनकी मृत्यु हो गयी। इस दशा के होने के उपरांत हम लोग इस दूसरे गांव में आकर रहने लगीं। यहाँ के जमींदार बहुत धर्मात्मा हैं, उन्होंने कुछ सामान्य 'कर' पर यह भूमि दी है, इसी से अब हमारी जीविका है।....

इतना कहते–कहते स्त्री का गला अभिमान से भर आया और कुछ न कह सकी।

स्त्री की कथा को सुनकर मोहनलाल को बड़ा दु:ख हुआ। रात विशेष बीत चुकी थी, अत: रात्रि–यापन करके, प्रभात में मलिन तथा पश्चिम गामीचंद्र का अनुद्धरण करके बताए हुए पथ से वह चले गये।

पर उनके मुख पर विषाद तथा लज्जा ने अधिकार कर लिया था। कारण यह था कि स्त्री की जमींदारी हरण करने वाले, तथा उसके प्राण प्रिय पति से उसे विच्छेद कराकर इस भाँति दु:ख देने वाले कुंदनलाल मोहनलाल के ही पिता थे।

*****

किस्मत

सुभद्राकुमारी चौहान

भौजी तुम सदा सफेद धोती क्यों पहिनती हो?

–मैं क्या बताऊँ, मुन्नी!

–क्यों भौजी! क्या तुम्हें अम्मा रंगीन धोती नहीं पहिनने देती?

–नहीं मुन्नी! मेरी किस्मत ही नहीं पहनने देती, अम्मा भी क्या करें?

–किस्मत कौन है, भौजी! वह भी क्या अम्मा की तरह तुमसे लड़ा करती है और गालियाँ देती है?

सात साल की मुन्नीने किशोरी के गले में बाँहें डाल कर पीठ पर झूलते हुए पूछा–किस्मत कहाँ है भौजी, मुझे भी बता दो।

सिल पर का पिसा हुआ मसाला कटोरी में उठाते हुए किशोरी ने एक ठंडी सांस ली–किस्मत कहाँ है, मुन्नी, क्या बताऊँ!

आँचल से आँसू पोंछकर किशोरी ने तरकारी बघार दी। खाना तैयार होने में अभी आधे घंटे की देर थी। इसी समय मुन्नी का माँ गरजती हुई चौके में आईं, बोली–दस साढ़े दस बज रहे हैं, अभी तक खाना भी नहीं बना! बच्चे क्या भूखे ही स्कूल चले जाएँगे। बाप–रे–बाप! मैं तो इस कुलच्छनी से हैरान आ गई। घर में ऐसा कौन–सा भारी काम है, जो समय पर खाना भी तैयार होता? दुनिया में सभी औरतें काम करती हैं या तू ही अनोखी काम करने वाली है।

एक साँस में, मुन्नी की माँ इतनी बातें कह गई और पटा बिछाकर चौके में बैठ गई। किशोरी ने डरते–डरते कहा– अम्माजी, अभी तो नौ भी नहीं बजे हैं, आधे घंटे से सब तैयार हो जाता है, तुम क्यों तकलीफ करती हो ?

चिमटा खींच कर किशोरी को मारती हुई सास बोली–तू सच्ची और मैं झूठी? दस बार राँड से कह दिया कि ज़वान न लड़ाया कर, पर मुँह चलाए ही चली जाती है। भूली किस घमंड में है? तेरे सरीखी पचास को तो मैं उँगलियों पर नचा दूं। चल हट निकल चौके से!

आँख पोंछती हुई किशोरी चौके से बाहर हो गई। जरा–सी मुन्नी अपनी माँ का यह कठोर व्यवहार विस्मय–भरी आँखों से देखती रह गई। किशोरी के जाते ही यह भी चुपचाप उसके पीछे चली। किन्तु तुरन्त ही माता की डाँट से वह लौट पड़ी।

इस घर में प्राय: प्रतिदिन इस प्रकार होता रहता था।

बच्चे खाना खाकर, समय के आधे घंटा पहिले ही स्कूल पहुँच गए। खाना बनाकर जब मुन्नी की माँ हाथ धो रही थीं तब उनके पति रामकिशोरी मुवक्किलों से किसी प्रकार छुट्टी पाकर घर आए। सुनसान घर देखकर बोले–बच्चे कहां गए सब?

नथुने फुलाती हुई मुन्नी की माँ ने कहा–स्कूल गए। और कहाँ जाते? कितना समय हो गया, कुछ खबर भी है?

घड़ी निकालकर देखते हुए रामकिशोर बोले–अभी साढ़े नौ ही तो बजे हैं। मुझे कचहरी भी ते जाना है न?

मुन्नी की माँ तड़पकर बोली–ज़रूर तुमने सुन लिया होगा? दुलारी बहू ने नौ कहा था

और तुम साढ़े नौ पर पहुँच गए तो इतना ही क्या कम किया? तुम उसकी बात झूठी होने दोगे! मैं तो कहती हूँ कि इस घर में नौकर–चाकर तक का मान–मुलाहिज़ा है पर मेरा नहीं। सब सच्चे और मैं झूठी–कहके मुन्नी की माँ ज़ोर से रोने लगी।

–मैं तो यह नहीं कहता कि तुम झूठी हो, घड़ी ही गलत हो गई होगी? फिर इसमे रोने तो कोई बात नहीं है।

यह कहते–कहते रामकिशोरजी स्नान करने चले गए। वे अपनी स्त्री के स्वभाव को अच्छी तरह जानते थे। किशोरी के साथ वह कितना दुर्व्यवहार करती है, यह भी उनसे छिपा न था। ज़रा–ज़रा सी बात पर किशोरी को मार देना और गाली दे देना तो बहुत मामूली बात थी। यही कारण था कि बहू के प्रति उनका व्यवहार बड़ा ही आदर और प्रेमपूर्ण होता था। किशोरी उनके पहिले विवाह की पत्नी के एकमात्र बेटे की बहू थी। विवाह के कुछ ही दिन बाद निर्दयी विधाता ने बेचारी किशोरी का सौभाग्य–सिन्दूर पोंछ दिया। उसके मायके में भी कोई न था। वह अभागिनी विधवा सर्वथा दया ही की पात्र थी। किन्तु ज्यों–ज्यों मुन्नी की माँ देखतीं कि रामकिशोरजी का व्यवहार बहू के प्रति बहुत ही स्नेह–पूर्ण होता जाता है त्यों–त्यों किशोरी के साथ उनका द्वेष भाव बढ़ता ही जाता। रामकिशोर जी अपनी इस पत्नी से बहुत दबते थे। इन सब बातों को जानते हुए भी वह किशोरी पर किये जाने वाले अत्याचारों को रोक न सकते थे। सौ बात की एक बात तो यह थी कि पत्नी के खिलाफ़ कुछ कह के वे अपनी खोपड़ी के बाल न नुचवाना चाहते थे। इसलिए बहुधा वे चुप ही रह जाया करते थे।

आज भी जान गए कि कोई बात जरूर हुई है और किशोरी को ही भूखी–प्यासी पड़ा रहना पड़ेगा। इसलिए वे कचहरी जाने से पहिले किशोरी के कमरे की तरफ गए और कहते गए कि– 'भूखी न रहना बेटी। रोटी जरूर खा लेना नहीं तो मुझे बड़ा दु:ख होगा।'

'रोटी जरूर खा लेना नहीं तो मुझे बड़ा दु:ख होगा।' रामकिशोर का यह वाक्य मुन्नी की माँ ने सुन लिया। उनके सिर से पैर तक आग लग गई, मन–ही–मन सोचा–इस चुड़ैल पर इतना प्रेम। कचहरी जाते–जाते उसका लाड़ कर गए। खाना खाने के लिए खुशामद कर गए, मुझसे बात करने की भी फुर्सत न थी? खाएगी खाना, देखती हूँ क्या खाती है? अपने बाप का हाड़!

मुन्नी की माँ ने खाना खा चुकने के बाद, सब का सब खाना उठाकर कहारिन को दे दिया और चौका उठाकर बाहर चली गई। किशोरी जब चौके में गई तो सब बरतन खाली पड़े थे। भात के बटुए में दो–तीन कन चावल के लिपटे थे। किशोरी ने उन्हीं को निकालकर मुँह में डाल लिया और पानी पीकर अपनी कोठरी में चली आयी।

आज रामकिशोर जी कचहरी में कुछ काम न होने के कारण जल्दी ही लौट आए। मुन्नी की माँ बाहर गई थीं। घर में पत्नी को कहीं न पाकर वे बहू की कोठरी की तरफ गए। बहू की दयनीय दशा देखकर उनकी आँखें भर आयीं। आज चन्दन जीता होता तब भी क्या इसकी यही दशा रहती ? अपनी भीरुता पर उन्होंने अपने–आपको न जाने कितना धिक्कारा। उसकी धोती कई जगह से फटकर सी जा चुकी थी। उस धोती से लज्जा निवारण भी कठिनाई से ही हो सकता था। बिछौने के नाम पर खाट पर कुछ चीथड़े थे। ज़मीन पर हाथ का तकिया लगाए वह पड़ी थी; उसे झपकी–सी लग गई थी। पैरों की आहट पाकर संकोच से ज़रा घूँघट सरकाने के लिए उसने ज्यों ही धोती खींची, धोती फट गई, हाथ का पकड़ा हुआ हिस्सा हाथ के साथ नीचे चला आया। रामकिशोर ने उसका कमल–सा मुरझाया हुआ चेहरा और डबडबाई हुई आँखें देखीं। उनका हृदय स्नेह से कातर हो उठा। वे ममत्व भरे मधुर स्वर

में बोले:

—तुमने खाना खा लिया है, बेटी।

किशोरी के मुँह से निकल गया 'नहीं' फिर वह संभलकर बोली—'खा तो लिया है बाबू।'

रामकिशोर बोले—मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि तुमने नहीं खाया है।

किशोरी कुछ न बोल सकी, उसका मुँह दूसरी ओर था, आँसू टपक रहे थे और वह नाखून से धरती खुरच रही थी।

रामकिशोर फिर बोले—तुमने नहीं खाया न? मुझे दु:ख है कि तुमने भी अपने बूढ़े ससुर की एक ज़रा—सी बात न मानी।

किशोरी को बड़ी ग्लानि हो रही थी कि वह क्या उत्तर दे। कुछ देर में बोली—बाबू, मैंने आप की आज्ञा का पालन किया है। जो कुछ चौके में था खा लिया है, झूठ नहीं कहती।

रामकिशोर को विश्वास न हुआ। कहारिन को बुलाकर पूछा तो कहारिन ने कहा—मेरे सामने तो बहू ने कुछ नहीं खाया। माँजी ने चौका पहले ही से खाली कर दिया था, खाती भी तो क्या?

पत्नी की नीचता पर कुपित और बहू के सौजन्य पर रामकिशोरजी पानी—पानी हो गए। आज उनकी जेब में 50 रुपये थे उसमें से दस निकालकर वे बहू को देते हुए बोले—यह दस रुपए रखो बेटी, तुम्हें यदि ज़रूरत पड़े तो खर्च करना। इसी समय आँधी की तरह मुन्नी की माँ ने कोठरी में प्रवेश किया। बीच में ही रुपयों को झपट कर छीन लिया, वह किशोरी के हाथ तक पहुँचने भी न पाए थे। गुस्से से तड़पकर बोली—बाप रे बाप ! अँधेरा हो गया ; कलयुग जो न कराये सो थोड़ा है। अपने सिर पर की चाँदी की तो लाच रखते। बेटी—बहू के सूने घर में घुसते तुम्हें लाज भी न आयी?

तुम्हारे ही सर चढ़ाने से तो यह इतनी सर चढ़ी है। पर मैं न जानती थी कि बात इतनी बढ़ चुकी है। इस बुढ़ापे में गढ़े ही जा के गिरे। राम, राम ! इस पापी के बोझ से तो धरती दबी जाती है।

वे तीर की तरह कोठरी से निकल गई। उनके पीछे ही रामकिशोर भी चुपचाप चले गए। वे बहुत वृद्ध न थे; परन्तु जीवन में नित्य होने वाली इन घटनाओं और जवान बेटे की मृत्यु से वे अपनी उमर के लिहाज से बहुत बूढ़े हो चुके थे। ग्लानि और क्षोभ से वे बाहर की बैठक में जाकर लेट गए। उन्हें रात रह—रहकर चन्दन की याद आ रही थी। तकिए में मुँह छिपाकर वह रो उठे। पीछे से आकर मुन्नी ने पिता के गले में बाँहें डाल दीं, पूछा—क्यों रोते हो बाबू? रामकिशोर ने विरक्त भाव से कहा— अपनी किस्मत के लिए बेटी!

सवेरे मुन्नी ने भौजी के मुँह से भी किस्मत का नाम सुना था और उसके बाद उसे रोते देखा था। इस समय अब उसने पिता को भी किस्मत के नाम से रोते देखा तो उसने विस्मित होकर पूछा—किस्मत कहाँ रहती है बाबू? क्या वह अम्मा की कोई लगती है?

मुन्नी के इस भोले प्रश्न से दु:ख के समय भी रामकिशोरजी को हंसी आ गई और वे बोले—हाँ , वह तुम्हारी माँ की बहिन है।'

मुन्नी ने विश्वास का भाव प्रकट करते हुए कहा—तभी वह तुम्हें भी और भौजी को रुलाया करती है।

*****

छुट्टी के दिन

ऊषा प्रियंवदा

पड़ोस के फ्लैट में छोटे बच्चे के चीख–चीखकर रोने से माया की नींद टूट गई। उसने अलसाई पलकें खोलकर घड़ी देखी, पौने छह बजे थे। फिर उसे याद आया, आज तो छुट्टी का दिन है। उसने पैर फैला लिए। पलकें आँखों पर ढलक आने दी। वह रेशमी चादर का नरम चिकना स्पर्श गालों पर महसूस करती हुई पड़ी रही। नींद की मीठी खुमारी अब भी उस पर छाई थी। खुली हुई खिड़की से सवेरे की ठंडी हवा आ रही थी, पूरी तरह से जगी होने पर भी नींद को बहलाकर फिर बुलाना चाह रही थी। पर वह बच्चा था कि रोए ही जा रहा था। छोटा–सा कोमल गोरा–गोरा बच्चा! गोल मुँह पर भवों की जगह पतली–सी लकीर, लम्बे–लम्बे रेशमी पलक। जब क्रोधित होकर रोता था तो गोल–गोल आँसू गैलों पर आ फिसलते थे और सारा काजल अपने साथ बहा ले जाते थे।

छुट्टी का दिन माया के लिए पहाड़–सा होता था, सप्ताह–भर जो काम टालती आती थी कि उन्हें ख़तम करके भी इतना समय बच जाता था कि खीझ उठती थी। झुँझला उठती थी। और जब भाई–बहनों के साथ घर पर रहती थी तो समझ भी न पाती थी कि इतवार कब आया और कैसे पंख लगाकर उड़ गया।

रोज़ की तरह आज भी चैती दरवाज़े पर धक्के देने लगी। तकिए में मुँह गड़ाकर माया ने अनसुनी करने की चेष्टा की पर लगातार धक्कों के साथ चैती ने 'बीबी जी' की पुकार लगानी शुरू कर दी तो माया ने ठंडी साँस ली, चादर हटाकर आँखें मूँदे ही मूँदे, उसने टटोलकर पैर स्लीपरों में डाले और दरवाज़े की तरफ़ बढ़ी, अभ्यस्त उँगलियों ने चटखनी गिरा दी। और सवेरे–सवेरे चैती का मुँह न दीख जाए, इसलिए वापस मुड़कर अपने बिस्तर पर आ गिरी। उसका मन चैती को भरपूर डाँट लगाने का हो रहा था, पर पलकों पर अभी कुछ भारीपन था। इसलिए वह चुप ही रही। चैती ने पहले नल खोलकर बर्तन उसके नीचे डाल दिए और खुरखुर करती हुई झाड़ू लगाने लगी।

तब माया उठकर बैठी। हाथ फैलाकर अँगड़ाई ली, फिर ज़ोर से कहा, ''सोने नहीं दिया न? क्यों चैती?''

धोती का पल्ला कमर में खोंसे झाड़ू हाथ में लिए पर्दा हटाकर चैती ने दर्शन दिए। कहा, ''सोती काहे नहीं?'' और पर्दे के पीछे ग़ायब हो गई।

माया उठकर खिड़की के पास आई। इधर–उधर के फ़्लैट्स में हलचल हो रही थी। एक तरफ़ दूधवाला अपनी बाल्टी में मैला–गन्दा हाथ बार–बार डालकर दूध नाप रहा था। हर बार नाप में बर्तन बाल्टी से टकराता और फिर लोटे में दूध गिरने की आवाज़ के साथ दूधवाले का मोटा खरखराता कंठ कहता, चार–पाँच–छह।

माया ने ग़ुसलखाने में जाकर बेसिन में नल खोल अपने हाथ उसके नीचे कर दिए। पानी की तेज़ और ठंडी धार हाथों पर पड़ती रही। चौके से चैती की खटपट सुनाई देती रही। माया ने गीत की एक कड़ी गुनगुनाने का प्रयत्न किया, पर आवाज़ बेसुरी हो गई। उसकी आँखें बेसिन के ऊपर लगे शीशे में अपना प्रतिबिम्ब देख रही थीं, सूना मुँह, सूनी आँखें, एक क्षण को उसे लगा कि यह प्रतिबिम्ब किसी और का है। वह स्वयं कैसे इतनी थकी, इतनी

टूटी–सी हो सकती है। शीशे के अन्दर से वह अनजान–सी युवती, माया को, जैसे पहचानने की कोशिश कर रही हो, ऐसे देखती रही, जब तक कि माया ने भीगे, असहाय विवश हाथों से अपने बाल छूते हुए दृष्टि हटा न ली। जले सफेद बेसिन के किनारे पानी की बूँदे फिसल रही थीं। माया की आँखें उस एक बूँद पर टिक गईं, जिसे सूरज की पहली किरन ने इन्द्रधनुषी रंगों से सजा दिया था। बूँद हिली फिर चिकने बेसिन पर फिसलती हुई पानी की धारा में मिल गई।

माया ने रुकी हुई लम्बी साँस बाहर आ जाने दी फिर अपने पर जैसे काबू पा, दोनों हाथों से अँजुलियाँ भर–भर अपने मुँह पर ज़ोर से छींटे देने लगी। उसी तरह, पानी भरती और मुँह पर उछाल देती, बिना कुछ सोचे, बिना कुछ सोचने का यत्न किए।

फिर उसने नल बन्द कर दिया। तौलिया उठाई और उसके नरम–नरम रोयों में अपना मुँह छिपा लिया। कुछ देर बाद उसने हाथ बढ़ाकर तौलिया स्टैंड पर फेंक दी। तौलिया ज़मीन की ओर तेज़ी से गिरी, पर तभी खूँटी में उसका कोना फँस गया और वह झूलती रही, धीरे–धीरे, बेबस–सी, पर माया ने उधर नहीं देखा, वह फिर पंजों पर ज़ोर दे शीशे में झाँकने लगी थी, एक अदम्य आशा लिए कि शायद इस बार वह झाँकने वाली युवती पहले से भिन्न हो और वह कुछ भिन्न थी भी, आँखें कुछ ज़रा–सी फैली थीं बरौनियों में, भौंहों में चिकना गीलापन था, उजले कोयों में बड़ी–सी तरल पुतलियाँ, होठों में कोमलता, माया के देखते–देखते वह खिंचे और खुल गए। उस छोटी–सी मुस्कान ने सारे चेहरे पर एक कमनीय स्निग्धता ला दी। माथे को घेरे हुए जो बालों की लटों थीं, उनमें कुछ बूँदें उलझी थीं, माया ने गरदन मोड़ी तो कनपटी के पास....एक बूँद में उसे रंग दिखाई दिए, ढेर सारे रंग, चमकते हुए, झिलमिलाते हुए, तड़पते हुए, कहीं वह गिर न जाएँ इस डर से माया शीशे के आगे से हट आई। दरवाज़ा खोला और कमरे में आकर कुर्सी पर पैर उठाकर बैठ गई। हाथ गाल पर टिकाकर सोचा, और अब?

चैती पास की मेज पर चाय पहले से ही रख गई थी। रोज़ की तरह मोटे, पतले, बेढंगे, कहीं गीले, कहीं कड़े, टोस्ट थे, रोज–रोज का सुनहली धारीवाला नाज़ुक प्याला था, वही कढ़ी हुई कोज़ी थी, जिस पर एक चिड़िया पंख खोलकर उड़ने को तैयार थी। पर उड़ेगी नहीं, उड़ सकती भी कैसे थी? उसे देखकर माया का मन एक निरर्थक आक्रोश से भर उठा था। उसका मन हुआ कि पैर से ठोकर मारकर मेज़ उलट दे और सारे बर्तन खनखनाकर ज़मीन पर जा गिरें। चीनी के बर्तनों के टूटने की आवाज़ कितना प्रिय होती है? पर मन में उसके मूल्य का अन्दाजा लगा और सोच कि बेकार में नए ख़रीदने पड़ेंगे। उसने अपने को रोक लिया और प्याले में चाय उँड़ेलने लगी।

गरम चाय को गले से उतार वह फिर खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गई। नीचे सड़क थी, कहीं–कहीं तारकोल हट जाने के बड़े–बड़े धब्बे थे। कहीं गहरे गड्ढे थे। अगर किसी ताँगे का पहिया उसमें फँस जाता तो चाबुक फटकार कर ताँगेवाला एक गाली दे उठता, अगर रिक्शे का पहिया होता तो रिक्शेवाला ज़ोर लगाकर निकलने की कोशिश करता और अगर तब भी न निकलता तो सवारियों को उतरना पड़ता। इस बाधा से उसके चेहरे रोष से लाल हो–हो जाते और बाद में मैले अँगोछे से माथा पोंछता रिक्शावाला और सवारियाँ सड़क की ऐसी हालत पर दु:ख से सिर हिलाते नज़रों से दूर हो जातीं। सड़क के उस पार एक इमारत थी, बड़ी–सी, पुरानी–सी, मरम्मत की सख्त ज़रूरत थी, सड़क की तरफ मुँड़ेर थी, जिस पर एंटिगोनम की लता छाई हुई थी और पोर्टिको की धूमिल पीली

दीवारों पर गहरे बैंगनी रंग में फूलती हुई घनी बेगमबेलिया थी, अपने वैभव में लचकती–झूमती बल खाती। जब हवा आती तो माया अपनी खिड़की से उनके बैंगनी रंग के फूल टूट–टूटकर उड़ते हुए देख सकती थी। उन तीन पंखुड़ियों के फूलों में कितना रंग था, कितनी मृदुता, पर माया के दिल में वह घनी पीड़ा भर जाते थे। इस वक़्त सूरज की किरणें बेगमबेलिया पर पड़कर उसके रंग को और चटकीला बना रही थीं। सुबह की हवा से कभी–कभी कोई फूल नीचे भटककर आ गिरता था।

माया उसमें डूबी थी, रमी हुई थी, हाथ खिड़की पर टिके थे, आँखे सामने, उसने नहीं जाना कि कब चैती आई। जब पायदान के पास बैठकर उसने दो बार झाड़ू ज़मीन पर पटकी तो उसने आँखें हटाई। वह कल्पना और स्वप्न थे, यह कमरा, यह दीवारें, यह बन्धन, जीवन और सत्य।

मालकिन का ध्यान अपनी ओर आकर्षित हुआ देख चैती ने कहा, ''खाए का बनिहैं?''

इतवार का दिन है, छुट्टी का दिन, आज तो कुछ विशेष खाना बनाना चाहिए। चैती को स्वामिनी का खोयापन अच्छा नहीं लगा।

''न खाबे का शौक़ न पहिरे का!'' सिर हिलाते हुए उसने जो झाड़ू पटकी तो लाख की एक चूड़ी चट से टूट गई। उसके टुकड़े बीनते हुए चैती ने कहा, ''का बनाई?''

''कुछ भी बना लो ।'' माया ने उदासीनता से कहा।

''खिचरी डाल देई?'' व्यंग्य से चैती ने पूछा।

''अयँ खिचड़ी....वही बना दो।'' माया ने कहा।

तब चैती ने कहा, ''ऐ बिटिया ! तोहार अस परानी हम नाहीं देखा न कबो कछु खाएँ न बनबाएँ। हमहूँ आदमी हन। हमरो मन है, हम खीर–पूरी खाब, कहै देइत है। दूध हम लै लिया है।''

चैती ढीठ हो गई। पर माया ने कुछ नहीं कहा। हटकर चली आई और कपड़ों की अलमारी खोली, कुछ रेशमी कपड़े धोने के लिए सप्ताह–भर से रखे थे, उन्हें बाहर किया, और जाकर गर्म पानी में साबुन घोलकर डाल दिए, अनमनी होकर फिर आकर अपनी मेज़ पर बैठ गई। एक और कापियाँ रखी थीं। उन पर धूल की गहरी परत थी। माया ने लाल पेंसिल उठा ली, धूल झाड़कर एक कापी खोली, ग़लतियों पर गहरे लाल निशान लगा दिए, पर मन उसमें भी नहीं लगा। हाथ बढ़ाकर पास की छोटी मेज़ पर से अख़बार उठा लिया, खोला।

अचानक ही वह कुर्सी खिसकाकर उठ खड़ी हुई, घड़ी पर नज़र डाली तो पाया कि बड़ी आसानी से दस बजे की फ़िल्म देखी जा सकती है। जाकर फिर अलमारी खोली। कुछ सोचकर एक साड़ी निकालकर पलंग पर रख दी और तैयार होने लगी। अभ्यस्त हाथों से बाल ठीक किए। पाउडर लगाया। कुछ देर अपने को देखती रही और लिपस्टिक उठाकर अपने होंठ, खूब गहरे लाल कर लिए। कपड़े बदले और चैती से कहा, ''मैं सिनेमा जा रही हूँ।''

चैती ने पूछा, ''कब तक अइहौ?''

''यही बारह साढ़े–बारह तक,'' और पर्स उठाकर बाहर आ गई। खुली खिड़की से हवा आई और अख़बार के पृष्ठ उड़कर फ़र्श पर जा गिरे, खुली कापी के पेज सरसराते रहे, मेज़पोश का कोना हिलता गया।

और हाल में बैठी माया को लगा कि जिस अकेलेपन से बचना चाहकर वह सिनेमा चली आई थी, उससे निष्कृति कहाँ हुई ? अभी उसकी नितान्त अकेले बैठकर सिनेमा देखने की आदत नहीं हुई थी, कुछ विचित्र अटपटा–सा लग रहा था। इंटरवल में उसने एक उड़ती–सी नज़र से इधर–उधर देखा तो पाया कि कालेज की संस्कृत टीचर मिसेज भारद्वाज भी कुछ दूर बैठी हैं, उन्होंने भी माया को देखा और हाथ हिलाकर पास बुलाया। माया को उनका साहचर्य विशेष प्रिय न था पर यह सोचकर कि एक से दो भले, उठकर उनके पास चली गई।

''अकेली ही हो?'' प्रश्न हुआ। मिसेज भारद्वाज की तीव्र दृष्टि माया पर थी।

''जी।''

''आज तो तुम पहचानी नहीं जा रही हो,'' कुछ व्यंग्य से मिसेज भारद्वाज ने कहा।

उत्तर में माया ने मुस्करा दिया।

तभी एक वयस्क–से सज्जन उसकी ओर देखते हुए पास आ गए। मिसेज भारद्वाज ने कहा, ''मेरे पति हैं, मि. भारद्वाज। आप मिस सहगल....हमारे कालेज में हिन्दी पढ़ाती हैं।'' मि. भारद्वाज ने नमस्कार किया और पासवाली सीट पर बैठ गए। कुछ वार्तालाप करने का प्रयास करते हुए पूछ दिया, ''अभी ही आई हैं आप?''

कुंठित हो माया ने कहा, ''जी।''

पत्नी की ओर उन्मुख होकर पूछा, ''चाय बग़ैरा कुछ मँगवाऊँ?''

''मँगवा लें। यह साड़ी बड़ी प्यारी है ! यहीं से ली है?'' मिसेज़ भारद्वाज ने पूछा।

''मदर ने भेजी है ।''

''आपका घर यहाँ नहीं है?'' मि. भारद्वाज को जैसे कुछ बात करने का विषय मिला।

''जी नहीं,'' और फिर कहा, ''लखनऊ में हैं।''

''वहाँ से आप यहाँ आई? इस छोटे शहर में?''

माया की मुस्कान अनजाने में ही विषादपूर्ण हो गई। कहा, ''यहाँ आसानी से नौकरी मिल गई।''

''आपको कभी पहले नहीं देखा।''

पति को धीरे–धीरे खुलते देख मिसेज़ भारद्वाज ने चेतावनी के–से स्वर में कहा, ''यह नई आई हैं इसी साल ।''

बेयरा के चाय ले आने से व्यवधान पड़ा। माया ने अभी एक घूँट ही चाय पी थी कि हाल की रोशनी बुझ गई ।उसके उठने का उपक्रम करने पर मिसेज़ भारद्वाज ने बाँह पर हाथ रखकर रोकते हुए कहा, यहीं बैठी रहो न ! माया फिर बैठ गई, पर उसका मन हो रहा था कि मिस्टर और मिसेज़ भारद्वाज के बीच की सीट से उठ इधर मिसेज़ भारद्वाज के पास बैठ जाए, पर यों उठ जाना अभद्रता होती। मि. भारद्वाज शालीनता से बैठे रहे। कभी भूल से भी उनकी कोहनी या कन्धा माया से नहीं हुआ, पर कुछ हँसी की बात पर उनका ज़ोर से, खुलकर हँसना माया को खटक जाता था, आखिर ऐसा ठहाका कि हाल गूँज जाए, लगाने की क्या ज़रूरत? बीच में माया ने अपने को झिड़का भी, फिर इस ज़रा–सी बात पर वह बेकार ही मन–ही–मन क्यों कुढ़ रही है।

फिल्म अधिक लम्बी न थी। जब समाप्त हुई तो माया ने मानसिक यातना से छुटकारा पाया। शिष्टता के साथ, जितनी जल्दी उनसे छुट्टी ले सकती थी, लेकर माया अलग हुई, पर अभी उसका मन घर जाने को न हुआ। सड़क के किनारे खड़े होकर कुछ देर सोचा कि और

क्या किया जाए ? ध्यान आया कि दूर के रिश्ते के एक भाई यहीं कहीं आसपास रहते हैं और माया के न आने का कई बार उलाहना दे चुके हैं। उनके घर आधा घंटा बिता आया जाए। पर्स में एक स्लिप पर उनका पता लिखा था, उसे ढूँढकर निकाला।

घर उनका आसानी से मिल गया। बाँसों को बाँधकर एक घेरा–सा बना दिया गया था। कुछ सूखे–सूखे टमाटर के पेड़ और कुछ गेंदे फूल रहे थे। माया ने दरवाज़े पर थपकी दी। कुछ देर में एक महिला अन्दर से झाँकी, अंदाज़ से सोच कर कि यही भाभी होंगी, माया ने नमस्कार कर कहा, ''चन्दन भाई साहब हैं? मैं माया हूँ।''

भाभी उत्तर में मुस्कराई और दरवाज़ा खोलते हुए कहा, ''आइए।''

कमरे में एक गन्दी–सी निवाड़ का पलंग पड़ा था, पास ही चारपाई थी, जिस पर बिस्तर बिछा था। एक गीली–सी गद्दी भी थी और सिरहाने छोटे बच्चे के कुछ कपड़े।

''बैठिए।''

माया पलंग की पट्टी पर बैठ गई, भाभी की धोती मैली थी और उसमें से घी की तेज़ महक आ रही थी।

''आपने ने मुझे पहचाना न होगा। चन्दन भाई साहब की चाची हैं न! वह मेरी बुआ लगती है।''

सम्बन्ध जानकर भाभी ने कहा, ''ओ बाँदे वाली सासजी की आप भतीजी हैं। इन्होंने जिक्र तो किया था।''

''कहाँ हैं भाई साहब?'' माया ने पूछा।

''आज इतवार है, घूमने चले गए हैं।'' उत्तर मिला।

''कब तक लौटेंगे?'' फिर यह देख कि वह अभी खड़ी ही हैं माया ने कहा, ''आप भी तो बैठिए।''

''चूल्हे पर तरकारी चढ़ी है ।'' और उसका ध्यान आते ही भाभी बोलीं, ''अभी दो मिनट में आई।'' कहकर कमरे से चली गई। माया उसी तरह पट्टी पर बैठी निरुद्देश्य इधर–उधर देखती रही। कमरे के बाद बरामदा था और उसी के निकट शायद चौका, क्योंकि कढ़ाई में कलछी चलने की आवाज़ साफ़ सुनाई दे रही थी। फिर एक छनाका हुआ, शायद पानी डाला गया और फिर हाथ में दरी लिए भाभी आई और कहा, ''उठिए इसे बिछा दूँ तो आराम से बैठिए ।''

दरी बिछाते हुए कहा, ''आज तो आपकी छुट्टी होगी, इतवार है।''

''जी।''

''आपको तो खूब अच्छा लगता होगा।''

प्रश्न सुन माया कुछ देर चुप रही, फिर कहा, ''जी हाँ, लगता तो है। वैसे तो कालेज का ही काम रहता है। कभी–कभी इधर–उधर चले गए, सिनेमा वग़ैरह। अभी सिनेमा से ही आ रही थी, सोचा कि मिलते चलें।''

बड़ी हसरत से भाभी ने कहा, ''अकेले रहने में तो यह है ही, जो मन आया, कर लिया। शादी से पहले मुझे सिनेमा देखने का बड़ा चाव था, मेरे एक चाचा गेट–कीपर थे, सब मुफ़्त में देखते थे, पर अब तो साल–डेढ साल से कोई सिनेमा ही नहीं देखा। मुन्ना छोटा है, घर में कोई है नहीं। छोड़े भी किस पर? कौन–सी फ़िल्म देखी आपने?''

माया ने फ़िल्म का नाम बताया।

''अँगरेज़ी की थी।'' भाभी बड़ी सच्चाई से बोली, ''भई हमें तो कुछ समझ में नहीं

आती। दो–एक बार गए भी, पल्ले कुछ नहीं पड़ा,'' फिर रुककर भाभी ने पूछा, ''आप तो शायद बी.ए होंगी?''

''जी नहीं, एम.ए,'' आहिस्ता से माया ने कहा। भाभी ने एक लम्बी साँस ली, कुछ कहने को मुँह खोला, फिर रुक गई। बात बदलकर कहा, ''खाना परस लाऊँ, आपके लिए?''

''जी नहीं, नौकरानी ने बनाकर रखा होगा। अब मुझे चलना चाहिए ।''

''कुछ देर तो रुकिए ।'' भाभी के स्वर में कुछ विशेष आग्रह नहीं था। माया जैसे एकदम उकता गई। उठती हुई बोली, ''अब चलूँ, भाभीजी, कभी हमारी तरफ़ भी आइए ।''

''कहूँगी उनसे, लाना–न–लाना उनके हाथ है।''

भाभी ने जल्दी से हाथ जोड़ दिए।

बाहर निकलते हुए माया को लगा कि वह बेकार ही आई, भाभी को शायद काफ़ी काम हो, पहुँचकर बाधा दी। घड़ी पर नज़र डाली, सवा बारह बजे थे। कुछ–कुछ भूख भी लग आई थी। बाँस का फाटक खोलकर बढ़ी ही थी कि चन्दन से भेंट हो गई।

''अरे, वाह, माया ! किधर जा रही हो?''

पकड़े जाने पर माया ने रुककर कहा, ''घर जा रही हूँ। आई थी, आप मिले ही नहीं?''

''अब तो मिल गया। चलो, चलो, अन्दर चलो। अपनी भाभी से मिलीं?''

''जी, भाई साहब, अभी माफ़ी चाहती हूँ फिर आऊँगी।''

पर वह नहीं माने और बेतकल्लुफ़ी से उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, ''नहीं बिना खाना खाए नहीं जा सकोगी।''

माया ने हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया, पर चन्दन हाथ पकड़े–पकड़े ही अन्दर तक ले गए और ज़ोर से पुकार कर कहा, ''सुनो, एक मेहमान आए हैं।''

भाभी चौके से बाहर आईं और देखा, फिर कहा, ''मैंने तो पहले ही रुकने को कहा था,'' फिर माया के मुख की ओर देखकर बोलीं, ''हाथ तो छोड़ दो बेचारी का।'' उसके कहने का ढंग ऐसा था कि चन्दन ने तुरन्त उसका हाथ छोड़ दिया, फिर कुछ अपराधियों की तरह कहा, ''खाने का इन्तज़ाम करो।''

''हो रहा है।'' रुखाई से कहकर वह वापस चली गई। चन्दन और माया ने स्पष्ट रूप से महसूस किया कि उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई है।

माया ने फिर कहा, ''भाई साहब, बेकार झंझट होगा, मेरी नौकरानी इन्तज़ार कर रही होगी।''

''झंझट क्या ? खाना अभी बना जा रहा है।'' स्वर ऊँचा कर उन्होंने पत्नी को पुकारा, ''सुनो, जरा जल्दी कर दो ।''

अन्दर से उत्तर आया, ''कर रही हूँ। पहले ज़रा मुन्ने को नहला दूँ।''

तब माया जाकर उधर खड़ी हो गई। कहा, ''भाभीजी, आप को परेशानी हो रही है, मैंने तो कहा था...''

भाभी धूप में बैठकर बच्चे को नहलाने की तैयारी कर रही थीं। माया को भूख लगने लगी थी। जहाँ वह खड़ी थी, वहीं से झाँककर देखा, चूल्हा ख़ाली था। बच्चा चीख–चीख कर रोता रहा द्ध भाभी उसे साबुन लगाती रहीं, उनके ढंग से लग रहा था कि जैसे आज ही रगड़–रगड़कर बच्चे को गोरा कर देंगी। माया बैठी–बैठी अपने को कोसती रही कि किस क्षण में

उसने यहाँ आने को सोचा। आखिरकार भाभी ने बच्चे को पोंछकर कपड़े पहनाए और कपड़े पहनाकर पालने में लिटा दिया और कहा, ''ज़रा दही ला दीजिए, रायता बन जाएगा।''

''नहीं—नहीं,'' माया ने जल्दी से कहा, ''रायते की कोई ज़रूरत नहीं।''

पर भाभी ने नहीं सुना। चन्दन भाई साहब दही लाने को भेज दिए गए, भाभी चौके में जाकर खटर—पटर करने लगीं। बच्चा रोता गया, माया ने उठकर उसे गोद में ले लिया। हिलाया—डुलाया, तो वह चुप हो गया। उसे कन्धे से लगाकर माया ने बरामदे में कई चक्कर लगाए, फिर देखा, वह सो गया था, धीरे से लिटाया तो फिर वह जाग गया। उसके चीखने से पहले ही माया ने उसे फिर कन्धे से लगा लिया और टहलने लगी। घूमते—घूमते उसके पैर थक गए, कन्धा दुखने लगा पर भाई साहब दही लेकर नहीं लौटे। भाभीजी रोटी बनाने का सारा आयोजन कर चूल्हे के पास चुपचाप बैठी थीं। माया से कहा, ''देखा, जहाँ जाते हैं वहीं के हो रहते हैं। दो क़दम पर बाज़ार है।'' फिर एकाएक उठती हुई बोली, ''जाने कब तक आएँगे, मैं नहा लूँ। आप कहें तो आपको खाना परस दूँ।''

''भाई साहब को आ जाने दीजिए।'' माया ने कहा।

भाभी उठकर अन्दर गईं। गुसलखाना बन्द किया ही था कि भाई साहब आ गए। प्रश्न—भरी दृष्टि से इधर—उधर देखा। माया ने अपने—आप ही कह दिया, ''नहाने गई हैं।''

''नहाने गई हैं? यह नहाने का टाइम है, इनके सब काम उलटे होते हैं।'' कहकर दही उन्होंने रख दिया और बाहर से कुंडी खड़काई। भाभी चुप रहीं। माया ने बच्चे को पालने पर लिटा दिया। इस बार वह सोता ही रहा। वह थकी थी और भाई साहब झुँझलाए, दो—एक बात कर दोनों चुप हो गए, और प्रतीक्षा करते कि कब भाभी निकलें।

भाभी साफ—सुथरी धोती पहनकर बाहर आईं, माथे पर बिन्दी लगाई। माँग से सिन्दूर छुआया। बिना किसी जल्दी के धीरे—धीरे चौके में आकर बैठ गई। रायता बनाया। चूल्हा फूँका। फिर उन्होंने पूछा, ''कहाँ खाएँगे ? चटाई बिछा लें। वह रखी है कोने में।''

माया ने चटाई बिछा ली, सैंडिल उतार डाले, हाथ धोकर चौके में गई, और थालियाँ उठाकर बाहर ले आई। दाल एकदम ठंडी और पतली थी। रायते में काफी ज़्यादा नमक। माया को बरबस चैती की बनाई नरम—नरम पूरियाँ और मेवे की खीर की याद आ गई। खाने के बाद कुछ देर वह और बैठी। जब भाभी स्वयं भी खा चुकीं, तब वह बिदा लेकर आई।

चैती शायद इन्तज़ार करते—करते थककर चली गई थी। माया ने अपने पास की दूसरी चाभी से ताला खोला, घड़ी की सुइयाँ तीन पार कर चुकी थीं। कमरे की छाँह में मधुर शीतलता थी। माया ने सैंडिल उतार दिए। पर्स कुर्सी पर डाल दिया और चौके की तरफ़ गई। खाना सब ढँका रखा था। पूरियाँ, सूखी मटर, दम आलू तथा गाढ़ी मेवे की खीर। लगता था कि चैती ने भी खाया नहीं था, कुपित हो भूखी ही घर चली गई थी। माया वहाँ से गुसलखाने में गई। उसकी आँखें जल रही थीं। सोचा कि ठंडे पानी से धो ले, तब उसकी दृष्टि पड़ी उन कपड़ों पर, जिन्हें गरम पानी और साबुन में डुबाकर वह बिल्कुल भूल गई थी। उसने झटपट कपड़े अलग—अलग उठा लिए। एक ब्लाउज़ का पीला और हरा रंग निकलकर दूसरी ब्लाउज़ों और सफ़ेद सिल्क की साड़ी में लग गया था। दोष अपना ही था, फिर भी न जाने क्यों उसे रोना आ गया। रेशमी ब्लाउज़ के कच्चे निकल जाने पर और कपड़े ख़राब हो जाने पर नहीं, बल्कि अपनी ज़िन्दगी के पैटर्न पर, उसके खोखलेपन और सारहीनता पर। किसलिए वह घर—बार छोड़कर इतनी दूर आकर पड़ी थी, किसलिए वह सुबह से शाम तक कालेज में मगज—पच्ची करती थी। इसलिए कि ज़िन्दगी के दिन एक—एक करके गुज़रते

जाएँ और हर गुज़रा हुआ दिन उसके जीवन का ख़ालीपन और भी गहरा करता जाए और एक दिन, सोचे कि इस जीवन में उसने क्या पाया, तो पता चले कि वह एक लम्हें अनन्त मरुस्थल की तरह थी।

माया ने ब्लाउज़ फिर उन्हीं कपड़ों में डाल दिया और आकर औंधी ही पलंग पर पड़ गई।

जब वह जगी तो कमरे में अँधेरा था। धूप न जाने कब की खिड़की की राह चली गई थी। घड़ी की सुइयाँ अँधेरे में चमक रही थीं। रोते–रोते सो जाने से उसका सिर बुरी तरह दर्द कर रहा था। इतवार की शाम को चैती नहीं आती थी। माया ने उठकर पानी पिया और कमरे में बत्ती जला दी। मेज़ के पास कुर्सी पर बैठ गई। मेज़ पर कापी खुली पड़ी थी। लाल पेंसिल के निशान चमक रहे थे। माया बहुत देर तक बैठी–बैठी बाहर देखती रहीद्ध आसमान में दो–एक तारे निकल आए थे। पड़ोस में दूधवाला बाल्टी खटका रहा था। दूध नापता हुआ, मोटे से एक रस स्वर में कह रहा था, ''दो...तीन...चार।'' सीढ़ियों पर ऊपर–नीचे आते–जाते जूतों की आवाज़ आ रही थी। गुसलखाने में कपड़े भींग रहे थे। चौके में ठंडा खाना रखा हुआ था और कनपटी के पास एक शिरा बुरी तरह दुःख रही थी।

धीरे–धीरे आकाश काला हो गया। तारों की ज्योति में उज्वलता आ गई। आने–जाने वालों का रव थम गया, माया एक साँस लेकर उठी। बिजली बुझाकर फिर पलंग पर लेट गई। उसे पता था कि नींद रात में बहुत देर से आएगी। फिर भी आँखें बन्द कर लीं। कहीं घड़ी ने धीरे–धीरे आठ के घंटे बजाना आरम्भ किया, माया ने करवट बदली। अगला दिन, काम का दिन.....।

*****

सिक्का बदल गया

कृष्णा सोबती

खद्दर की चादर ओढ़े, हाथ में माला लिए शाहनी जब दरिया के किनारे पहुंची तो पौ फट रही थी। दूर–दूर आसमान के परदे पर लालिमा फैलती जा रही थी। शाहनी ने कपड़े उतारकर एक ओर रक्खे और 'श्रीराम, श्रीराम' करती पानी में हो ली। अंजलि भरकर सूर्य देवता को नमस्कार किया, अपनी उनीदी आंखों पर छींटे दिये और पानी से लिपट गयी! चनाब का पानी आज भी पहले–सा ही सर्द था, लहरें लहरों को चूम रही थीं। वह दूर सामने काश्मीर की पहाड़ियों से बंर्फ पिघल रही थी। उछल–उछल आते पानी के भंवरों से टकराकर कगारे गिर रहे थे लेकिन दूर–दूर तक बिछी रेत आज न जाने क्यों खामोश लगती थी! शाहनी ने कपड़े पहने, इधर–उधर देखा, कहीं किसी की परछाई तक न थी। पर नीचे रेत में अगणित पांवों के निशान थे। वह कुछ सहम–सी उठी!

आज इस प्रभात की मीठी नीरवता में न जाने क्यों कुछ भयावना–सा लग रहा है। वह पिछले पचास वर्षों से यहां नहाती आ रही है। कितना लम्बा अरसा है! शाहनी सोचती है, एक दिन इसी दुनिया के किनारे वह दुलहिन बनकर उतरी थी। और आज...आज शाहजी नहीं, उसका वह पढ़ा–लिखा लड़का नहीं, आज वह अकेली है, शाहजी की लम्बी–चौड़ी हवेली में अकेली है। पर नहींयह क्या सोच रही है वह सवेरे–सवेरे! अभी भी दुनियादारी से मन नहीं फिरा उसका! शाहनी ने लम्बी सांस ली और 'श्री राम, श्री राम', करती बाजरे के खेतों से होती घर की राह ली। कहीं–कहीं लिपे–पुते आंगनों पर से धुआं उठ रहा था। टनटन बैलों, की घंटियां बज उठती हैं। फिर भी... फिर भी कुछ बंधा–बंधा–सा लग रहा है। 'जम्मीवाला' कुआं भी आज नहीं चल रहा। ये शाहजी की ही असामियां हैं। शाहनी ने नंजर उठायी। यह मीलों फैले खेत अपने ही हैं। भरी–भरायी नयी फसल को देखकर शाहनी किसी अपनत्व के मोह में भीग गयी। यह सब शाहजी की बरकतें हैं। दूर–दूर गांवों तक फैली हुई जमीनें, जमीनों में कुएं सब अपने हैं। साल में तीन फसल, जमीन तो सोना उगलती है। शाहनी कुएं की ओर बढ़ी, आवांज दी, 'शेरे, शेरे, हसैना हसैना...।'

शेरा शाहनी का स्वर पहचानता है। वह न पहचानेगा! अपनी मां जैना के मरने के बाद वह शाहनी के पास ही पलकर बड़ा हुआ। उसने पास पड़ा गंडासा 'शटाले' के ढेर के नीचे सरका दिया। हाथ में हुक्का पकड़कर बोला 'ऐ हैसैना–सैना...।' शाहनी की आवांज उसे कैसे हिला गयी है! अभी तो वह सोच रहा था कि उस शाहनी की ऊंची हवेली की अंधेरी कोठरी में पड़ी सोने–चांदी की सन्दूकचियां उठाकर... कि तभी 'शेरे शेरे...। शेरा गुस्से से भर गया। किस पर निकाले अपना क्रोध? शाहनी पर! चीखकर बोला'ऐ मर गयीं एं एब्ब तैनू मौत दे'

हसैना आटेवाली कनाली एक ओर रख, जल्दी–जल्दी बाहिर निकल आयी। 'ऐ आयीं आं क्यों छावेले (सुबह–सुबह) तड़पना एं?'

अब तक शाहनी नंजदीक पहुंच चुकी थी। शेरे की तेजी सुन चुकी थी। प्यार से बोली, 'हसैना, यह वक्त लड़ने का है? वह पागल है तो तू ही जिगरा कर लिया कर।'

'जिगरा !' हसैना ने मान भरे स्वर में कहा, 'शाहनी, लड़का आखिर लड़का ही है। कभी शेरे से भी पूछा है कि मुंह अंधेरे ही क्यों गालियां बरसाई हैं इसने?' शाहनी ने लाड़ से

हसैना की पीठ पर हाथ फेरा, हंसकर बोली'पगली मुझे तो लड़के से बहू प्यारी है! शेरे'

'हां शाहनी!'

'मालूम होता है, रात को कुल्लूवाल के लोग आये हैं यहां?' शाहनी ने गम्भीर स्वर में कहा।

शेरे ने जरा रुककर, घबराकर कहा, 'नहीं शाहनी...' शेरे के उत्तर की अनसुनी कर शाहनी जरा चिन्तित स्वर से बोली, 'जो कुछ भी हो रहा है, अ'छा नहीं। शेरे, आज शाहजी होते तो शायद कुछ बीच–बचाव करते। पर...' शाहनी कहते–कहते रुक गयी। आज क्या हो रहा है। शाहनी को लगा जैसे जी भर–भर आ रहा है। शाहजी को बिछुड़े कई साल बीत गये, परपर आज कुछ पिघल रहा है शायद पिछली स्मृतियां... आंसुओं को रोकने के प्रयत्न में उसने हसैना की ओर देखा और हल्के–से हंस पड़ी। और शेरा सोच ही रहा है, क्या कह रही है शाहनी आज! आज शाहनी क्या, कोई भी कुछ नहीं कर सकता। यह होके रहेगा क्यों न हो? हमारे ही भाई–बन्दों से सूद ले–लेकर शाहजी सोने की बोरियां तोला करते थे। प्रतिहिंसा की आग शेरे की आंखों में उतर आयी। गंड़ासे की याद हो आयी। शाहनी की ओर देखानहीं–नहीं, शेरा इन पिछले दिनों में तीस–चालीस कत्ल कर चुका है पर वह ऐसा नीच नहीं... सामने बैठी शाहनी नहीं, शाहनी के हाथ उसकी आंखों में तैर गये। वह सर्दियों की रातें कभी–कभी शाहजी की डांट खाके वह हवेली में पड़ा रहता था। और फिर लालटेन की रोशनी में वह देखता है, शाहनी के ममता भरे हाथ दूध का कटोरा थामे हुए 'शेरे–शेरे, उठ, पी ले।' शेरे ने शाहनी के झुर्रियां पड़े मुंह की ओर देखा तो शाहनी धीरे से मुस्करा रही थी। शेरा विचलित हो गया। 'आंखिर शाहनी ने क्या बिगाड़ा है हमारा? शाहजी की बात शाहजी के साथ गयी, वह शाहनी को जरूर बचाएगा। लेकिन कल रात वाला मशवरा! वह कैसे मान गया था फिरोंज की बात! 'सब कुछ ठीक हो जाएगा सामान बांट लिया जाएगा!'

'शाहनी चलो तुम्हें घर तक छोड़ आऊं!'

शाहनी उठ खड़ी हुई। किसी गहरी सोच में चलती हुई शाहनी के पीछे–पीछे मंजबूत कदम उठाता शेरा चल रहा है। शंकित–सा–इधर उधर देखता जा रहा है। अपने साथियों की बातें उसके कानों में गूंज रही हैं। पर क्या होगा शाहनी को मारकर?

'शाहनी!'

'हां शेरे।'

शेरा चाहता है कि सिर पर आने वाले खतरे की बात कुछ तो शाहनी को बता दे, मगर वह कैसे कहे?

'शाहनी'

शाहनी ने सिर ऊंचा किया। आसमान धुएं से भर गया था। 'शेरे'

शेरा जानता है यह आग है। जबलपुर में आज आग लगनी थी लग गयी! शाहनी कुछ न कह सकी। उसके नाते रिश्ते सब वहीं हैं हवेली आ गयी। शाहनी ने शून्य मन से डयोढ़ी में कदम रक्खा। शेरा कब लौट गया उसे कुछ पता नहीं। दुर्बल–सी देह और अकेली, बिना किसी सहारे के! न जाने कब तक वहीं पड़ी रही शाहनी। दुपहर आयी और चली गयी। हवेली खुली पड़ी है। आज शाहनी नहीं उठ पा रही। जैसे उसका अधिकार आज स्वयं ही उससे छूट रहा है! शाहजी के घर की मालकिन...लेकिन नहीं, आज मोह नहीं हट रहा। मानो पत्थर हो गयी हो। पड़े–पड़े सांझ हो गयी, पर उठने की बात फिर भी नहीं सोच पा रही। अचानक रसूली की आवांज सुनकर चौंक उठी। 'शाहनी–शाहनी, सुनो ट्रकें आती हैं लेने?'

'ट्रके...?' शाहनी इसके सिवाय और कुछ न कह सकी। हाथों ने एक–दूसरे को थाम लिया। बात की बात में खबर गांव भर में फैल गयी। बीबी ने अपने विकृत कण्ठ से कहा 'शाहनी, आज तक कभी ऐसा न हुआ, न कभी सुना। गजब हो गया, अंधेर पड़ गया।' शाहनी मूर्तिवत् वहीं खड़ी रही। नवाब बीबी ने स्नेह–सनी उदासी से कहा 'शाहनी, हमने तो कभी न सोचा था!'

शाहनी क्या कहे कि उसीने ऐसा सोचा था। नीचे से पटवारी बेगू और जैलदार की बातचीत सुनाई दी। शाहनी समझी कि वक्त आन पहुंचा। मशीन की तरह नीचे उतरी, पर डयोढ़ी न लांघ सकी। किसी गहरी, बहुत गहरी आवांज से पूछा 'कौन? कौन हैं वहां?'

कौन नहीं है आज वहां? सारा गांव है, जो उसके इशारे पर नाचता था कभी। उसकी असामियां हैं जिन्हें उसने अपने नाते–रिश्तों से कभी कम नहीं समझा। लेकिन नहीं, आज उसका कोई नहीं, आज वह अकेली है! यह भीड़ की भीड़, उनमें कुल्लूवाल के जाट। वह क्या सुबह ही न समझ गयी थी?

बेगू पटवारी और मसीत के मुल्ला इस्माइल ने जाने क्या सोचा। शाहनी के निकट आ खड़े हुए। बेगू आज शाहनी की ओर देख नहीं पा रहा। धीरे से जरा गला सांफ करते हुए कहा 'शाहनी, रब्ब नू एही मंजूर सी।'

शाहनी के कदम डोल गये। चक्कर आया और दीवार के साथ लग गयी। इसी दिन के लिए छोड़ गये थे शाहजी उसे? बेजान–सी शाहनी की ओर देखकर बेगू सोच रहा है 'क्या गुंजर रही है शाहनी पर! मगर क्या हो सकता है! सिक्का बदल गया है...'

शाहनी का घर से निकलना छोटी–सी बात नहीं। गांव का गांव खड़ा है हवेली के दरवाजे से लेकर उस दारे तक जिसे शाहजी ने अपने पुत्र की शादी में बनवा दिया था। तब से लेकर आज तक सब फैसले, सब मशविरे यहीं होते रहे हैं। इस बड़ी हवेली को लूट लेने की बात भी यहीं सोची गयी थी! यह नहीं कि शाहनी कुछ न जानती हो। वह जानकर भी अनजान बनी रही। उसने कभी बैर नहीं जाना। किसी का बुरा नहीं किया। लेकिन बूढ़ी शाहनी यह नहीं जानती कि सिक्का बदल गया है...

देर हो रही थी। थानेदार दाऊद खां जरा अकड़कर आगे आया और डयोढ़ी पर खड़ी जड़ निर्जीव छाया को देखकर ठिठक गया! वही शाहनी है जिसके शाहजी उसके लिए दरिया के किनारे खेमे लगवा दिया करते थे। यह तो वही शाहनी है जिसने उसकी मंगेतर को सोने के कनफूल दिये थे मुंह दिखाई में। अभी उसी दिन जब वह 'लीग' के सिलसिले में आया था तो उसने उद्दंडता से कहा था 'शाहनी, भागोवाल मसीत बनेगी, तीन सौ रुपया देना पड़ेगा!' शाहनी ने अपने उसी सरल स्वभाव से तीन सौ रुपये दिये थे। और आज...?

'शाहनी!' डयोढ़ी के निकट जाकर बोला 'देर हो रही है शाहनी। (धीरे से) कुछ साथ रखना हो तो रख लो। कुछ साथ बांध लिया है? सोना–चांदी'

शाहनी अस्फुट स्वर से बोली 'सोना–चांदी!' जरा ठहरकर सादगी से कहा 'सोना–चांदी! बच्चा वह सब तुम लोगों के लिए है। मेरा सोना तो एक–एक जमीन में बिछा है।'

दाऊद खां लज्जित–सा हो गया। 'शाहनी तुम अकेली हो, अपने पास कुछ होना जरूरी है। कुछ नकदी ही रख लो। वक्त का कुछ पता नहीं'

'वक्त?' शाहनी अपनी गीली आंखों से हंस पड़ी। 'दाऊद खां, इससे अच्छा वक्त देखने के लिए क्या मैं जिन्दा रहूंगी!' किसी गहरी वेदना और तिरस्कार से कह दिया शाहनी ने।

दाऊद खां निरुत्तर है। साहस कर बोला 'शाहनी कुछ नकदी जरूरी है।'

'नहीं बच्चा मुझे इस घर से (शाहनी का गला रुंध गया) नकदी प्यारी नहीं। यहां की नकदी यहीं रहेगी।'

शेरा आन खड़ा गुजरा कि हो ना हो कुछ मार रहा है शाहनी से। 'खां साहिब देर हो रही है'

शाहनी चौंक पड़ी। देरमेरे घर में मुझे देर! आंसुओं की भँवर में न जाने कहाँ से विद्रोह उमड़ पड़ा। मैं पुरखों के इस बड़े घर की रानी और यह मेरे ही अन्न पर पले हुए...नहीं, यह सब कुछ नहीं। ठीक हैदेर हो रही हैपर नहीं, शाहनी रो–रोकर नहीं, शान से निकलेगी इस पुरखों के घर से, मान से लाँघेगी यह देहरी, जिस पर एक दिन वह रानी बनकर आ खड़ी हुई थी। अपने लड़खड़ाते कदमों को संभालकर शाहनी ने दुपट्टे से आंखें पोछीं और डयोढ़ी से बाहर हो गयी। बडी–बूढ़ियाँ रो पड़ीं। किसकी तुलना हो सकती थी इसके साथ! खुदा ने सब कुछ दिया था, मगरमगर दिन बदले, वक्त बदले...।

शाहनी ने दुपट्टे से सिर ढाँपकर अपनी धुंधली आंखों में से हवेली को अन्तिम बार देखा। शाहजी के मरने के बाद भी जिस कुल की अमानत को उसने सहेजकर रखा आज वह उसे धोखा दे गयी। शाहनी ने दोनों हाथ जोड़ लिए यही अन्तिम दर्शन था, यही अन्तिम प्रणाम था। शाहनी की आंखें फिर कभी इस ऊंची हवेली को न देखी पाएंगी। प्यार ने जोर मारासोचा, एक बार घूम–फिर कर पूरा घर क्यों न देख आयी मैं? जी छोटा हो रहा है, पर जिनके सामने हमेशा बड़ी बनी रही है उनके सामने वह छोटी न होगी। इतना ही ठीक है। बस हो चुका। सिर झुकाया। डयोढ़ी के आगे कुलवधू की आंखों से निकलकर कुछ बन्दें चू पड़ीं। शाहनी चल दी ऊंचा–सा भवन पीछे खड़ा रह गया। दाऊद खां, शेरा, पटवारी, जैलदार और छोटे–बड़े, बच्चे, बूढ़े–मर्द औरतें सब पीछे–पीछे।

ट्रकें अब तक भर चुकी थीं। शाहनी अपने को खींच रही थी। गांववालों के गलों में जैसे धुंआ उठ रहा है। शेरे, खूनी शेरे का दिल टूट रहा है। दाऊद खां ने आगे बढ़कर ट्रक का दरवांजा खोला। शाहनी बढ़ी। इस्माइल ने आगे बढ़कर भारी आवांज से कहा' शाहनी, कुछ कह जाओ। तुम्हारे मुंह से निकली असीस झूठ नहीं हो सकती!' और अपने साफे से आंखों का पानी पोछ लिया। शाहनी ने उठती हुई हिचकी को रोककर रुंधे–रुंधे से कहा, 'रब्ब तुहानू सलामत रक्खे बच्चा, खुशियां बक्शे...।'

वह छोटा–सा जनसमूह रो दिया। जरा भी दिल में मैल नहीं शाहनी के। और हम–हम शाहनी को नहीं रख सके। शेरे ने बढ़कर शाहनी के पांव छुए, 'शाहनी कोई कुछ कर नहीं सका। राज भी पलट गया' शाहनी ने कांपता हुआ हाथ शेरे के सिर पर रक्खा और रुक–रुककर कहा'तैनू भाग जगण चन्ना!' (ओ चाँद तेरे भाग्य जागें) दाऊद खां ने हाथ का संकेत किया। कुछ बड़ी–बूढ़ियां शाहनी के गले लगीं और ट्रक चल पड़ी।

अन्न–जल उठ गया। वह हवेली, नयी बैठक, ऊंचा चौबारा, बड़ा 'पसार' एक–एक करके घूम रहे हैं शाहनी की आंखों में! कुछ पता नहींट्रक चल दिया है या वह स्वयं चल रही है। आंखें बरस रही हैं। दाऊद खां विचलित होकर देख रहा है इस बूढ़ी शाहनी को। कहां जाएगी अब वह?

'शाहनी मन में मैल न लाना। कुछ कर सकते तो उठा न रखते! वकत ही ऐसा है। राज पलट गया है, सिक्का बदल गया है...'

रात को शाहनी जब कैंप में पहुंचकर जमीन पर पड़ी तो लेटे–लेटे आहत मन से

सोचा 'राज पलट गया है...सिक्का क्या बदलेगा? वह तो मैं वहीं छोड़ आयी।...'

और शाहजी की शाहनी की आंखें और भी गीली हो गयीं!

आसपास के हरे–हरे खेतों से घिरे गांवों में रात खून बरसा रही थी।

शायद राज पलटा भी खा रहा था और सिक्का बदल रहा था...

परिशिष्ट–1

लेखक परिचय

डॉक्टर नरेंद्र कोहली (1940–2021)

डॉक्टर नरेंद्र कोहली प्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार है उन्होंने साहित्य के सभी प्रमुख विधाओं उपन्यास व्यंग नाटक कहानी एवं गांधी धाम विधाओं यथा संस्मरण निबंध पत्रादि आलोचनात्मक साहित्य में अपनी लेखनी चलाई है। उन्होंने शता धिक श्रेष्ठ ग्रंथों का सृजन किया है हिंदी साहित्य में महाकाव्य आत्मक उपन्यास की विधा को प्रारंभ करने का श्रेय उनको जाता है पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों की गुत्थी सुलझा ते हुए उन के माध्यम से आधुनिक समाज की समस्याओं एवं उनके समाधान को समाज के समक्ष प्रस्तुत करना कोहली की अन्यतम विशेषता है कोहली जी सांस्कृतिक राष्ट्रवादी साहित्यकार है जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से भारतीय जीवन शैली एवं दर्शन का समय सम्यक परिचय कराया है जनवरी 2017 मैं उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गय।

नरेंद्र कोहली का जन्म संयुक्त पंजाब के सियालकोट नगर भारत में हुआ था जो पाकिस्तान में है प्रारंभिक शिक्षा लाहौर में प्रारंभ हुई और भारत विभाजन के पश्चात परिवार का जमशेदपुर चले आने पर आगे बढ़े यह बहुत रोचक है कि प्रारंभिक अवस्था में ही हिंदी के इस सर्वकालिक श्रेष्ठ रचनाकार की शिक्षा का माध्यम हिंदी नाउ पर उर्दू था हिंदी विषय उन्हें दसवीं कक्षा की परीक्षा पास करने के बाद ही मिल पाया विद्यार्थी के रूप में नरेंद्र अत्यंत मेधावी थे एवं अच्छे अंको से उत्तीर्ण होते रहने वाद विवाद प्रतियोगिता में भी उन्हें अनेक बार अनेक प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान प्राप्त हुआ बाद में दिल्ली विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर और डॉक्टरेट की उपाधि ली। प्रसिद्ध आलोचक डॉ नरेंद्र के निर्देशन में हिंदी उपन्यास सर्जन एवं सिद्धांत इस विषय पर उनका शोध प्रबंध पूर्ण हुआ इस प्रारंभिक कार्य में ही युवा नरेंद्र कोहली की मर्म बेदक दृष्टि एवं मूल तत्व को पकड़ लेने की शक्ति का पता लग जाता है। श्रेष्ठ साहित्यकारों होने के साथ–साथ वे एक श्रेष्ठ एवं ओजस्वी वक्ता थे उनका व्यक्तित्व एक सरल सहृदय एवं स्पष्ट वादी पुरुष का था।

कोरोना महामारी के दूसरे दौर में अप्रैल को संस्कृत भारतीय 2021 के कार्यक्रम में उन्होंने अंतिम बार सार्वजनिक रूप से भाग लिया। कोरोना संक्रमण के लक्षण प्रबल होने पर उन्हें दिल्ली के संत स्टीफन अस्पताल में भर्ती कराया गया जहां उन्होंने नश्वर देह त्याग दिया।

आप की साहित्यिक कृतियां उपन्यास पुनरारंभ, आतंक, आश्रितों का विद्रोह, साथ सहा गया दुःख, मेरा अपना संसार, दीक्षा, अवसर, जंगल की कहानी, संघर्ष की ओर, युद्ध, अभिज्ञान, आत्मदान, प्रीतिकथा, बंधन, अभ्युदय, अधिकार, कर्म, निर्माण, साधना, धर्म, क्षमा करनाजीजी, अंतराल, प्रच्छन्न, प्रत्यक्ष, कहानी संग्रह– परिणति, कहानी का अभाव, दृष्टि देश में एकाएक, शटल, नमक का कैदी, निचले फ्लैट में, नरेंद्र कोहली की कहानियां, संचित भूख, समग्र कहानियां, मेरी तेरह कहानियां, नाटक–शंबूक की हत्या, निर्णय रुका हुआ, हत्यारे, गारे की दीवार, समग्र नाटक, संघर्ष की ओर, किष्किंधा, अगस्त्य कथा,

व्यंग्य–एक और लाल तिकोन, पांच एब्सर्ड उपन्यास, जगाने का अपराध, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, आधुनिक लड़की की पीड़ा, त्रासदियां, परेशानियां, समग्र व्यंग, आत्मा की पवित्रता, गणतंत्रा का गणित, मेरी इक्यावन व्यंग रचनाएं, देश के शुभचिंतक, त्राहि–त्राहि, इश्क एक शहर का निबंध– नेपथ्य, माजरा क्या है, जहां है धर्म, वही है जय, किसे जगाऊं, बाल साहित्य– गणित का प्रश्न, आसान रास्ता, एक दिन मथुरा में, हम सब का घर, तुम अभी बच्चे हो, समाधान, कुकुर, शोध समीक्षा– प्रेमचंद के साहित्य सिद्धांत, कुछ प्रसिद्ध कहानियों के विषय, प्रेमचंद, हिंदी उपन्यास:सृजन और सिद्धांत, प्रेमचंद, संस्मरण– बाबा नागार्जुन, प्रतिनाद, अन्य साहित्य– नरेंद्र कोहली की चुन हुई रचनाएंआदि।

*****

मोहन राकेश (1925–1972)

श्री मोहन राकेश हिन्दी के आधुनिक नाटककारों में सर्वाधिक चर्चित व्यक्तित्व हैं। अपने दौर के नाट्य लेखकों और उपन्यासकारों में इनका विशिष्ट स्थान है। इनका जन्म पंजाब के अमृतसर में एक सुसंस्कृत परिवार में हुआ था। इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से हिन्दी और संस्कृत में एम.ए किया। देश–विभाजन के बाद बंबई आये। जीविकोपार्जन के लिए बंबई , शिमला, जालन्धर और दिल्ली के विभिन्न स्कूलों और कालेजों में अध्यापन करते रहे। कई वर्षों तक 'सारिका' के संपादक भी रहे। यायावर प्रकृति के राकेश जी स्थायी रूप से कहीं टिक नहीं पाए। अतः इन्होंने स्वतंत्र रूप से लेखन–कार्य प्रारंभ किया। इनके 'आषाढ़ का एक दिन' तथा 'आधे–अधूरे' नाटकों के लिए संगीत–नाटक अकादमी से पुरस्कार मिले हैं। इनका महत्वपूर्ण उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' अंग्रेजी और रूसी भाषा में अनूदित हुआ।

मोहन राकेश को अपूर्व लोकप्रियता उनके नाटकों के कारण मिली थी, परंतु कथा–साहित्य की विकास यात्रा में भी इनकी कृतियाँ 'मील के पत्थर' साबित हुई है। नई कहानी के उद्भव तथा विकास में इनका अग्रणी स्थान है। राकेश जी ने अपने जीवन–काल की अल्पावधि में साठ के लगभग कहानियां लिखी थीं, जो चार जिल्दों में प्रकाशित हुई थीं। इनके अंतरंग मित्र, साहित्यकार कमलेश्वर ने मोहन राकेश की अप्रकाशित कहानियों को संपादित कर अपने मित्र के प्रति श्रद्धांजलि चढ़ायी है।

प्रमुख रचनाए: कथा–कृतिया : क्वार्टर, पहचान, वारिस, एक घटना। उपन्यास : अंधेरे बन्द कमरे, न आने वाला कल, अंतराल। नाटक : आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस, आधे–अधूरे, पैर तले धरती। एकांकी : अण्डे के छिलके, बीज नाटक। निबंध और यात्रा वर्णन : आखिरी चट्टान तक, परिवेश।

इन कृतियों के अतिरिक्त मोहन राकेश ने अनेक आलोचनात्मक टिप्पणियाँ, रोडियो नाटक भी लिखे हैं।

स्वातंत्र्योत्तर कहानीकारों में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी मोहन राकेश ने अपनी कृतियों में सामाजिक विषमताओं को कलात्मक अभिव्यक्ति देने का सक्षम प्रयात किया है। यदि संवेदनशीलता तथा भावों की गंभीरता मोहन राकेश के कथा–साहित्य की विशिष्टताएँ हैं तो विचारों और घटनाओं के प्रति सजगता और वातावरण की सजीवता एवं गहरी अर्थवत्ता इनके यात्रा–वृत्तातों के महत्वपूर्ण अंश हैं पात्रों और परिस्थितियों के सम्बन्धों के चित्रात्मक

अंकन एवं मनोवैज्ञानिक चिंतन की दृष्टि से मोहन राकेश अद्वितीय कलाकार सिद्ध होते हैं।

*****

चित्रा मुद्गल (1944)

हिंदी की वरिष्ठ कथा लेखिका है उन्हें सन 2018 का हिंदी भाषा का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया उनके उपन्यास 'आवां पर उन्हें वर्ष 2003 में 'व्यास सम्मान मिला उनका जीवन किसी रोमांचक प्रेम–कथा से कम नहीं है, उन्नाव के जमींदार परिवार में जन्मी किसी लड़की के लिए साठ के दशक में अंतर जातीय प्रेमविवाह करना आसान काम नहीं था, लेकिन चित्राजी ने तो शुरू से ही कठिन मार्ग के विकल्प को अपनाया। पिता का आलीशान बंगला छोड़कर 25 रुपए महीने किराए की खोली में रहना और मजदूर यूनियन के लिए काम करना। चित्राजी ने हर चुनौती को हंसते–हंसते स्वीकार किया। उनकी प्रारंभिक शिक्षा उनके पैतृक गांव में निहाली खेड़ा (जिला उन्नाव, उ.प्र) से लगे ग्राम भरतीपुर के कन्या पाठशाला में। हायर सेकेंडरी पुना बोर्ड से की और शेष पढ़ाई मुंबई विश्वविद्यालय से। बहुत बाद में स्नातकोत्तर पढ़ाई पत्राचार पाठ्यक्रम के माध्यम से एस.एन.डी.टी महिला विश्वविद्यालय से की। चित्रकला में गहरी रुचि रखने वाली चित्राजी ने जे.जे. स्कूल आफ आर्टस् से फाइन आर्टस् का अध्ययन भी किया। सोमैया कॉलेज से पढ़ाई के दौरान श्रमिक नेता दत्ता सामंत के संपर्क में आकर श्रमिक आंदोलन से जुड़ी। उन्हीं दिनों घरों में झाड़ू–पोंछा कर, उत्पीड़न और बदहाली से जीवन–यापन करने वाली बाइयों के उत्थान और बुनियादी अधिकारों की बहाली के लिए संघर्षरत संस्था 'जागरण' की बीस वर्ष की वय में सचिव बनी।

प्रकाशित कृतियां– अब तक नौ कहानी संकलन, तीन उपन्यास, एक लेख–संकलन, एक बाल उपन्यास, चार बालकथा–संग्रह, छह संपादित पुस्तकें। गुजराती में दो अनुदित पुस्तकें प्रकाशित। अंग्रेजी में 'हाइना एंड अदर शॉर्ट स्टोरीज' बहुप्रशंसित। दिल्ली दूरदर्शन के लिए फिल्म 'वारिस' का निर्माण किया। कहानियां– जिनावर, बेईमान, आढ़ाई गज की ओढ़नी, उपन्यास – 'आवां'

*****

शिवानी (सन 1923– 2003)

शिवानी हिंदी की एक कहानीकार और उपन्यासकार थीं। शिवानी का वास्तविक नाम 'गौरापन्त' था किंतु ये शिवानी के नाम से लेखन कार्य करती थीं। शिवानी का जन्म विजयदशमी के दिन राजकोट, गुजरात में हुआ था। इनकी शिक्षा शांति निकेतन में हुई। साठ और सत्तर के दशक में इनकी लिखी कहानियां और उपन्यास हिंदी पाठकों के बीच में बहुत लोकप्रिय हुए और आज भी लोग उन्हें बहुत चाव से पढ़ते हैं।

हिंदी साहित्य जगत में शिवानी एक ऐसी शख्सियत रहीं, जिनकी हिंदी, संस्कृत, गुजराती, बंगाली, उर्दू और अंग्रेजी पर अच्छी पकड़ रही, शिवानी अपनी कृतियों में उत्तर

भारत के कुमाऊं क्षेत्र के आसपास की लोक–संस्कृति की झलक दिखलाने और किरदारों के बेमिसाल चित्रण करने के लिए जानी गई। महज 12 वर्ष की उम्र में पहली कहानी प्रकाशित होने से लेकर उनके निधन तक उनका लेखन कार्य निरंतर जारी रहा। उनकी अधिकतर कहानियां और उपन्यास नारी प्रधान रहे। उनकी लिखी कृतियों में कृष्णाकली, भैरवी, आमोदेर शांति निकेतन, विषकन्या, चौदह फेरे आदि प्रमुख हैं। उन्होंने अपने कृतियों में नायिका के सौंदर्य और उसके चरित्र का वर्णन बड़े दिलचस्प अंदाज़ में किया है।

कहानी के क्षेत्र में पाठकों और लेखकों की रूचि निर्मित करने तथा कहानी को केंद्रीय विधा के रूप में विकसित करने का श्रेय शिवानी को जाता है। उनकी कृतियों से यह झलकता है कि उन्होंने अपने समयके यथार्थ को बदलने की कोशिश नहीं की। शिवानी की कृतियों में चरित्र चित्रण में एक तरह का आवेग दिखाई देता है। वह चरित्र को शब्दों में कुछ इस तरह पिरोकर पेश करती थीं जैसे पाठकों की आंखों के सामने राजा रवि वर्मा का कोई खूबसूरत चित्र तैर जाए। उन्होंने संस्कृतनिष्ठ हिंदी का प्रयोग किया है। जब शिवानी का उपन्यास कृष्णकली धर्मयुग में प्रकाशित हो रहा था तो हर जगह इसकी चर्चा होती थी।

साहित्यिक कृतियां उपन्यास– कृष्णकली, कालिंदी, अतिथि, पूतोंवाली, चल खुसरो घर आपने, श्मशान, चंपा, मायापुरी, कैंजा, गेंदा, भैरवी, स्वयंसिद्धा, विषकन्या, रति विलाप, आकाश, कहानी संग्रह– शिवानी की श्रेष्ठ कहानियां, शिवानी की मशहूर कहानियां, झरोखा, मृण्माला की हंसी, अपराधिनी, पुष्पहार, विषकन्या, संस्मरण–आमोदेर, शांति निकेतन स्मृति कलश, बातायन, जालक, अन्य–यात्रा वृतांत–चरैवेति, यात्रिक, आत्मकथा– सुना हूँ तात यह अमर कहानी आदि।

*****

जयशंकर प्रसाद (1889–1937)

छायावादी युग के प्रवर्तक महाकवि जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी में एक संपन्न वैश्य परिवार में हुआ था। उनके पिता और बड़े भाई बचपन में ही स्वर्गवासी हो गए थे। अल्पावस्था में ही लाड–प्यार में पले प्रसाद जी को अपने घर का सारा भार वहन करना पड़ा। उन्होंने विद्यालयी शिक्षा छोड़कर घर पर ही अंग्रेजी, हिंदी, बांग्ला तथा संस्कृत आदि भाषाओं का ज्ञानार्जन किया। अपने पैतृक कार्य को करते हुए भी उन्होंने अपने भीतर काव्य प्रेरणा को जीवित रखा। जब भी समय मिलता उनका मन भाव जगत के पुष्प को चुनता जिन्हें वे दुकान की बही के पन्नों पर सँजों दिया करते थे। द्विवेदी युग से अपनी काव्य रचना का प्रारंभ करने वाले महाकवि जयशंकर प्रसाद छायावादी काव्य के जन्मदाता एवं छायावादी युग के प्रवर्तक समझे जाते हैं । इनकी रचना 'कामायनी' एक काल जई कृति है जिसमें छायावादी प्रवृत्तियों एवं विषय एवं विशेषताओं का समावेश हुआ है अंतर्मुखी कल्पना एवं सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यक्ति प्रसाद जी के काव्य में की प्रमुख विशेषता है

प्रसाद आधुनिक हिंदी काव्य के सर्वप्रथम कवि है। इन्होंने अपनी कविताओं में सूक्ष्म अनुभूतियों का रहस्यवादी चित्रण किया है और हिंदी काव्य जगत में एक नवीन क्रांति उत्पन्न कर दी इनकी इसी क्रांति ने एक नए युग का सूत्रपात किया, जिसे 'छायावादी युग' के नाम से जाना जाता है।

कृतियां– प्रसादजी सर्वतोन्मुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति थे। उन्होंने कुल 67 रचनाएं प्रस्तुत की है। प्रसाद जी उत्कृष्टकोटि के कहानीकार थे। उनकी कहानियों में भारत का अतीत मुस्कुराता है। आपके कहानी संग्रह 'छाया' ,'प्रतिध्वनि', 'आकाशदीप', 'आंधी' और 'इंद्रजाल', उपन्यास 'कंकाल', 'तितली', तथा 'इरावती' (अपूर्ण नाटक) 'राज्यश्री', 'अजातशत्रु', 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामी' आदि। 'कामायनी' आपका सुप्रसिद्ध महाकाव्य है। 'आंसू', 'लहर', 'झरना' आपकी महत्वपूर्ण काव्य–कृतियाँ है। प्रसादजी भाव और शिल्प दोनों दृष्टियों से हिंदी के युग–प्रवर्तक साहित्यकार के रूप में हमारे सम्मुख आते हैं। प्रसादजी ने द्विवेदी युगीन काव्यादर्श के प्रति विरुद्ध विद्रोह किया एक नवीन काव्यधारा के रूप में छायावाद के रूप में सूत्रपात किया। उन्होंने छायावाद को पुष्ट किया और स्वयं इसके शीर्ष स्थान को प्राप्त किया भाव और कला, अनुभूति और अभिव्यक्ति . वस्तु और शिल्प सभी क्षेत्रों में प्रसादजीयुगान्तरकारी परिवर्तन किए हैं।

*****

सुभद्रा कुमारी चौहान (1904 1948)

सुभद्रा कुमारी चौहान हिंदी साहित्य सुप्रसिद्ध कवियत्री और लेखिका थीं। झांसी की रानी कविता (कविता) उनकी प्रसिद्ध कविता है राष्ट्रीय चेतना की एक सजग कवयित्री रही हैं। स्वाधीनता संग्राम में अनेकों बार जेल यातनाएँ सहने के पश्चात अपनी अनुभूतियों को कहानी में व्यक्त किया है ।

उनका जन्म नाग पंचमी के दिन इलाहाबाद के निकट निहालपुर नामक गांव में रामनाथ सिंह जमींदार के परिवार में हुआ। वेबाल्यकाल से ही कविताएं रचने लगी थीं। उनकी रचनाएं राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण है।उनके पिता शिक्षा के प्रेमी थे और उन्हीं की देखरेख में उनकी प्रारंभिक शिक्षा हुई। 1919 में खंडवा के ठाकुर लक्ष्मण सिंह के साथ विवाह के बाद वे जबलपुर आ गईं थीं। 1921 में गांधीजी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने वाली पहली महिला थीं।वे दो बार जेल भी गईं।सुभद्रा कुमारी चौहान की जीवनी इनकी पुत्री सुधा चौहान ने 'मिला तेज से तेज' नामक पुस्तक में लिखी है वे रचनाकार होने के साथ–साथ स्वाधीनता संग्राम कीसेनानी भी थीं।एक कार दुर्घटना में उनका आकस्मिक निधन हो गया।

साहित्यिक कृतियां– बिखरे मोती, उनका पहला कहानी संग्रह है। इसमें भग्नावशेष, होली, पापी पेट, मछली रानी, परिवर्तन, दृष्टिकोण, कदम्ब के फूल, किस्मत, मछुये की बेटी, एकादशी, आहुति, धाती, अमराही, अनुरोध, व ग्रामीण कुल 15 कहानियां हैं।इन कहानियों की भाषा सरल बोलचाल की भाषा है। अधिकांश कहानियां नारी विमर्श पर केंद्रित है उन्मादिनी नहीं शीर्षक से उनका दूसरा कथा संग्रह 1934 में छपा। इसमें उन्मादिनी, असमंजस, अभियुक्त, सोने की कंठी, नारी हृदय, पवित्रईर्ष्या, अंगूठी की खोज, चढ़ा दिमाग, व वेश्या की लड़की कुल 9 कहानियां हैं।इन सब कहानियों का मुख्य स्वर पारिवारिक सामाजिकपरिदृश्य ही है।'सीधे–साधे चित्र' सुभद्रा कुमारी चौहान का तीसरा वह अंतिम कथा संग्रह है। इसमें कुल 14 कहानियां हैं। रूपा, कैलाशी नानी,बिआल्हा, कल्याणी,दो साथी, प्रोफेसर मित्रा, दुराचारी व मंगला 8 कहानियों की कथावस्तु नारी प्रधान सामाजिक

समस्याएं हैं। हींगवाला, राही, तांगेवाला, एवं गुलाब सिंह कहानियां राष्ट्रीय विषयों पर आधारित है। सुभद्रा कुमारी चौहान नेकुल 46 कहानियां लिखी है और अपनी व्यापक कथा दृष्टि सेवे एकअति लोकप्रिय कथाकार के रूप में हिंदी साहित्य जगत में सुप्रतिष्ठित हैं। वातावरण चित्रण प्रधान शैली की भाषा सरल तरह काव्यात्मक है इसकारणइनकी रचनाकी सादगीहृदयग्राही है।

*****

ऊषा प्रियंवदा (24 दिसंबर 1930)

हिंदी साहित्य की आधुनिक महिला कथाकारों में इनका नाम प्रमुखता से लिया जाता है आधुनिक जीवन की ऊब और छटपटाहट संत्रास और अकेलेपन की स्थिति को ऊषाजी ने अपनी कलम से सजीव प्रस्तुति प्रदान की है। आपको वर्ष 2007 के पद्मभूषण डॉक्टर मोटूरि सत्यनारायण पुरस्कार सम्मानित किया गया। ऊषा प्रियंवदा जी का जन्म कानपुर में हुआ था। उन्होंने लंबे समय तक अमेरिका में प्रवास बिताया। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन कार्य कर रही हैं। ऊषा प्रियंवदा जी ने अंग्रेजी में शिक्षा प्राप्त करने के बाद श्री राम कॉलेज दिल्ली, इलाहाबाद विश्वविद्यालय विस्कांसिन विश्वविद्यालय, मेडिसन में दक्षिण एशियाई विभाग में भी अध्यापन कार्य से जुड़ी रहीं।

नई कहानी आंदोलन के साथ उभर कर आने वाली ऊषा प्रियंवादा महिला कथाकारों में अपना विशेष स्थान रखती है ऊषाजी इलाहाबाद से संबद्ध रहीं हैं। वहीं से इन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय अंग्रेजी में एम.एकी परीक्षा उत्तीर्ण की। वे वहीं कुछ समय के लिए अंग्रेजी की प्राध्यापिका रहीं। फिर वे अमेरिका चली गईं। वहां इंडियाना विश्वविद्यालय में आधुनिक अमेरिकी साहित्य पर अनुसंधान किया। ऊषा प्रियंवदा लंबे समय तक विस्कांसिन विश्वविद्यालय में हिंदी का अध्यापन कार्य करती रहीं। उषा प्रियंवदा नई कथाकारों में अग्रणी है उन्होंने दर्जनों कहानियां लिखी हैं इनके तीन कहानी संग्रहों में जिंदगी और गुलाब के फूल, एक कोई दूसरा तथा कितना बड़ा झूठ उपलब्ध हैं। ये संग्रह वस्तु और शिल्प दोनों दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। उनकी कहानियों में वापसी, मछलियां, और प्रतिध्वनि उल्लेखनीय है ऊषाजी की समस्त कहानियां मध्यमवर्गीय जीवन के सुख–दु:ख, आशा–निराशा एवं जीवन–संघर्ष पर आधारित हैं। स्त्रियों की दशा को लेकर नई पुरानी पीढ़ी के टकराव का चित्रण किया है। हॉस्टल में पढ़ने वाली छात्रा, नौकरी पेशा अकेली रहने वाली औरत, विदेश जाने वाली स्त्री के संत्रास का चित्रण उन्होंने बखूबी किया है। आपकी कहानियों में मुख्यतः मध्यमवर्गीय व्यक्तिवादी चेतना व्यंजन हुई है

कहानी संग्रह– जिंदगी और गुलाब के फूल, एक कोई दूसरा, मेरी प्रिय कहानियां, वनवास, कितना बड़ा झूठ, शून्य, संपूर्ण कहानियां,

उपन्यास– पचपन खंभे, लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका, शेष यात्रा और अंतर्वंशी।

*****

कृष्णा सोबती (18 फ़रवरी 1925–25 जनवरी 2019)

गुजरात (अब पाकिस्तान)) अपनी संयमित अभिव्यक्ति और सुथरी रचनात्मकता के लिए जानी जाती हैं। इनकी पहली कहानी 'लामा' थी, जो 1950 ई. में प्रकाशित हुई थी। उन्होंने हिंदी की कथा भाषा को विलक्षण ताज़गी़ दी है। उनके भाषा संस्कार के घनत्व, जीवंत प्रांजलता और संप्रेषण ने हमारे वक्त के कई पेचीदा सत्य उजागर किए हैं।

डार से बिछुड़ी, मित्रो मरजानी, यारों के यार तिन पहाड़, बादलों के घेरे, सूरजमुखी अंधेरे के, ज़िन्दगी़नामा, ऐ लड़की, दिलोदानिश, हम हशमत, और समय सरगम तक उनकी कलम ने उत्तेजना, आलोचना विमर्श, सामाजिक और नैतिक बहसों की जो फिज़ा साहित्य में पैदा की है उसका स्पर्श पाठक लगातार महसूस करता रहा है।

इनकी कहानियों को लेकर काफ़ी विवाद हुआ। विवाद का कारण इनकी मांसलता है। स्त्री होकर ऐसा साहसी लेखन करना सभी लेखिकाओं के लिए सम्भव नहीं है। डॉ. रामप्रसाद मिश्र ने कृष्णा सोबती की चर्चा करते हुए दो टूक शब्दों में लिखा है- उनके 'ज़िन्दगीनामा' जैसे उपन्यास और 'मित्रो मरजानी' जैसे कहानी संग्रहों में मांसलता को भारी उभार दिया गया है...केशव प्रसाद मिश्र जैसे आधे–अधूरे सैक्सी कहानीकार भी कोसों पीछे छूट गए। बात यह है कि साधारण शरीर की 'अकेली' कृष्णा सोबती हों या नाम निहाल दुकेली, मन्नु–भण्डारी या प्रायः वैसे ही कमलेश्वर... अपने से अपने कृतित्व को बचा नहीं पाए... कृष्णा सोबती की जीवनगत यौनकुठा उनके पात्रों पर छाई रहती है।

पुरस्कार : साहित्य अकादमी की महत्तर सदस्यता समेत कई राष्ट्रीय पुरस्कारों और अलंकरणों से शोभित कृष्णा सोबती ने पाठक को निज के प्रति सचेत और समाज के प्रति चैतन्य किया है।

सम्मान : आपको हिंदी अकादमी दिल्ली की ओर से वर्ष 2000–2001 के शलाका सम्मान से सम्मानित किया गया है।

*****